श्री कृष्णामृतमहार्णव
एवं
सदाचारस्मृतिः

प्रकाशक

श्रीमध्वतत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान प्रयाग

श्री पेजावर स्वामी जी अभिवन्दन समिति

श्री हनुमत् भीम मध्वांतर्गत रामकृष्ण

वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीवाय नमः

श्री राम श्री

श्रीकृष्णामृतमहार्णवः
एवं
सदाचारस्मृतिः

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ जी द्वारा विरचित
महार्णव रत्न संग्रह से सुशोभित

पाण्डुरङ्गीवीरनारायणाचार्यरचिता
हीन्दीविवृतिः

श्री मध्व तत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान प्रयाग
श्री अखित भारतीय पेजावर स्वामी अभिवंदन समिति

श्रीकृष्णामृतमहार्णवः एवं सदाचारस्मृतिः
अनुवादक श्री पाण्डुरङ्गीवीरनारायणाचार्य

प्रकाशक
श्री मध्व तत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान
श्री मध्व मठ 63, मीरागली, दारागंज, इलाहाबाद, 211006
फोनः- 0532 - 2504587

प्रथम मुद्रण 1000 प्रतियाँ
सहयोग राशि -
पुस्तकालय संस्करण - 110 रुपये
सामान्य संस्करण - 75 रुपये
29-4-2011
तिजारा - राजस्थान

मुद्रक -
श्री वैष्णव प्रेस
मोरी, दारागंज, इलाहाबाद

श्री राम श्री
अनुग्रह संदेश

श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य मूल महासंस्थान श्री पेजावर अधोक्षज
पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी उडुपि

हमारे विशेष अभिमान पात्र **श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी** ने किया आठ शास्त्र ग्रंथों का हिन्दी भाषाअनुवाद को देखकर हमे सन्तोष हुआ है। श्री स्वामी जी अपने पूर्वाश्रम में अनेक वर्षो से सामजिक सेवा में रचनात्मक कार्यों को किये हैं। हमारे साथ अकाल, भूकम्प, बाढ़ इत्यादि कामों में सम्पूर्ण समर्पण भाव से काम किए हैं। अब अपने अस्सी वर्ष के समय में आठ शास्त्र ग्रन्थों का अनुवाद और प्रकाशन का स्तुत्य काम अपने हाथ में लिए हैं। मध्व तत्वज्ञान को अभ्यास करने के जिज्ञासुओं को अनुकूल होने वाली एक विशिष्ट सेवा किए हैं।

वे अपने सत्तर वर्ष की आयु में कन्नड़ भाषियों के अनुग्रह रूप में अनेक शास्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किए थे। अब प्रयाग में रहकर मध्व सिद्धान्त का प्रसार कार्य करते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा मध्व तत्वज्ञान को हिन्दी भाषी प्रदेश में प्रचार करने का महान कार्य कर रहे हैं।

श्री कृष्ण, श्री वेद व्यास जी, अस्मदुपास्य श्री रामविट्ठल जी इनको विशेष अनुग्रह करते हुए इनकी सेवा विस्तार रूप से सारी जनता को मिले यही हमारा आशीर्वाद है।

इति नारायण स्मरण

श्री श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी महाराज

पेजावर मठ उडुपि

अनुग्रह संदेश
श्री राम श्री

श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य मूल महा संस्थान श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधिपति **श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी**, उडुपी

आठ सौ वर्ष पूर्व जगद्गुरू मध्वाचार्य जी ने मध्व सिद्धान्त का प्रचार प्रसार बहुत पैमाने से आरम्भ किया। इस प्रवाह को अक्षुण्ण रखने के लिए उडुपी में आठ पीठ और उत्तर कर्नाटक में एक पीठ की स्थापना किए। श्री जयतीर्थ मुनि, श्री श्रीपाद राज स्वामी, श्री व्यासराजमहामुनि, श्री वादि राज योगी, श्री रघूत्तम स्वामी जी, श्री राघवेन्द्र तीर्थ जी इत्यादि महामहिमों ने उस सिद्धान्त को और विकसित किए। इसके बारे में यह श्लोक प्रसिद्ध है।

व्यासेन व्युप्तबीजः श्रृतिभुवि भगवत्पाद लब्धांकुरश्रीः।
प्रत्नैरीषत् प्रभिन्नोऽजनिजयमुनिना सम्यगुद्भिन्न शाखाः।।
मौनीशव्यासराजात् उदित किसलयः पुष्पितोयं जयीन्द्रात्।
अद्य श्री राघवेन्द्रात् विलसति फलितो मध्व सिद्धान्तशाखे।।

हमारे दीक्षा शिक्षा गुरू युगपुरूष श्री श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी उत्तर भारत में श्री मध्व तत्व ज्ञान को प्रसार करने हेतु **बीस वर्ष** पहले श्री प्रयाग क्षेत्र में श्री मध्व पीठ की स्थापना की है। उन दिनों से प्रयाग का हमारा मठ मध्वसिद्धान्त का प्रसार करते आया है।

इस वर्ष श्री पेजावर मठ के पूज्य श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ श्री पाद जी का अस्सीवाँ वर्ष है। स्वीकृत मध्व सिद्धान्त का प्रसार करने हेतु इस वर्ष में हमने अपने मठ से आठ मध्व शास्त्र ग्रन्थों का प्रकाशन करने का व्रत ग्रहण किया है। हमारे प्रिय शिष्य प्रयाग पीठाधिपति श्री विद्यात्म तीर्थ जी आठ ग्रन्थों को हिन्दी में अनुवाद किए हैं। हम आशा रखते हैं कि सद्भक्त लोग इन ग्रन्थों का उपयोग करके साधक बनें, भगवान के प्रिय बनें।

हमारे शिष्य श्री विद्यात्म तीर्थ जी को भी अस्सी वर्ष हो गये हैं। इस शुभ अवसर में वे आठ शास्त्रग्रन्थ अनुवाद कर अपने आयु को सार्थक बनाए हैं। हम अपने आराध्य श्री सीतारामांजनेय स्वामी से प्रार्थना करते हैं कि उनके हाथ से ऐसे कार्य और हों, उसका उपयोग सद्भक्तों के लिए सन्तोष कारक हो।

इति नारायण स्मरण

श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी

उडुपी

कार्तिक शुक्ल एकादशी

प्रस्तावना

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य जी ने द्वैत सिद्धान्त की प्रतिष्ठापना करते हुए सैंतीस शास्त्र ग्रन्थों को लिखा है वे सर्वमूल नाम से प्रसिद्ध है। उनमें श्री कृष्णामृतमहार्णव और सदाचार स्मृति छोटे ग्रन्थ होते हुए भी अत्यन्त महत्व के हैं। जगद्गुरु जी उन ग्रन्थ रूप गागर में सागर भरे हैं। इस ग्रन्थ के बारे में सुमध्वविजय नाम के ग्रन्थ में नारायण पडिताचार्य जी लिखते हैं।

क्षेत्राग्र्यं त्रिभुवन वैद्यनाथ नाथं।

प्रस्थाय प्रचुर तरान्तरः प्रभावि।।

श्रीकृष्णामृत परमार्णवाभिधानाम्।

चक्रे सद्वचनततिम् स्वभक्तभूत्यै।।

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य जी अपने संचार में कोक्कड़ नाम के वैद्य नाथेस्वर नाम से प्रसिद्ध क्षेत्र को आये थे। वहाँ उनके प्रिय शिष्य नित्य अग्निहोत्र रखने वाले **एढ़पडित्ताय** मोक्ष पाने की इच्छा से करने का आचरण और धर्म मार्ग को बताने के लिए प्रार्थना की। उस समय जगद्गुरु जी जो उपदेश दिए वही श्रीकृष्णामृतमहार्णव बना।

इस ग्रन्थ में आचार्य जी से रचित श्लोक कम हैं, किन्तु विष्णु, नारद, पद्य, स्कन्द इत्यादि महापुराण वचनो से संग्रहित श्लोक हैं। आचार्य जी मतस्थापना चार्य हैं ही, उसके साथ साथ वे सम्पूर्ण ज्ञान वाले कवि और बड़े मनीषी हैं। उनकी काव्य की प्रतिभा इस छोटे सी से ग्रन्थ में व्यक्त

होता है। प्रारम्भ में मंगलाचरण में बताये गये शब्दों के अनुसार इस संसार के अनेक विध के ताप में तपने वाले लोगों के उद्धार के लिए यह ग्रन्थ रचाया गया है। इसके लिए यह ग्रन्थ **अधीयानं इदम् शास्त्रम्** उन्ही के इन शब्दो से स्पष्ट होता है।

इस ग्रन्थ में एकादशी के आचरण के बारे में शास्त्रीय आधार पूर्वक सारे महत्व के विषयों की चर्चा की गयी है। साथ साथ देव पूजा के अर्चन, स्मरण, ध्यान इत्यादि षोड्श विधि की पूजा का महत्व बताया गया है। यह विवरण हमे भागवत की नवधा भक्ति के विवरण की याद दिलाता है। आचार्य जी मंगलाचरण में अर्चन, स्मरण, ध्यान, कीर्तन, कथन और श्रवण ये छः विध पूजा विधि को बताते हुए आगे इस ग्रथ में इनके बारे में ही विवरण देते हैं, इसकी पूर्व सूचना देते हैं।

यह शास्त्र ग्रन्थ होते हुए भी काव्य की गरिमा को दिखाने वाला ग्रन्थ है। इसमें प्रत्येक श्लोक में भगवान के एक विशिष्ट नाम का प्रयोग किया गया है। लौकिक व्यवहार मे अंकित नाम के लिए कोई अर्थ नही रहता। दृष्टान्त के लिए क्षीरसागर लाल नाम वाले के घर में पीने के लिए दूध तो नही छाछ भी नही रहता, क्योंकि उसके घर में गाय ही नही है। किन्तु भगवान के नाम के बारे में ऐसा नही होता। प्रत्येक नाम के लिए एक विशिष्ट अर्थ होता है। आचार्य जी श्लोकों को लिखते या चयन करते समय इसके बारे में विशेष ध्यान दिये हैं। यह ग्रन्थ श्रीकृष्ण नाम के अमृतमहार्णव यानी अमृत का महासागर है। हम इस सागर की गहाराई मे जितना डूबते हैं, उतने रत्न हमे मिलते हैं। भगवान के नाम के निर्वचन से (व्याकरण की सहायता से शब्द का अलग अलग अर्थ निकालना) हमे

समग्र श्लोक का और एक विशेषार्थ मिल जाता है। यह आचार्य जी की विशेष प्रतिभा के कारण है। एक ही श्लोक में दो तीन अर्थ दिखाना उनकी विशेषता है। हम **महार्णवरत्न संग्रह** में अपने ज्ञान की मिति में इसको दिखाने का एक प्रयास किए हैं। यह एक छोटा सा प्रयत्न है, समग्र अर्थ दिखाना हमारे योग्यता के अधीन नही है, और यह कार्य पूर्ण भी नही हुआ है। केवल पाठकों को दिशा दर्शन करते हुए इनमें उनके कुतूहल को उत्पादन करने का यह एक छोटा सा प्रयत्न है। पाठक इसका सदुपयोग करेंगे यही आशा है।

पंडित पांडुरंगी वीर नारायणाचार्य बड़े विद्वान् हैं। वे बहुत कष्ट सहन करते हुए हिन्दी भाषी लोगों के लिए अनकूल हो इस दृष्टि से इस ग्रन्थ का और सदाचार स्मृति का भाषा मे अनुवाद किए हैं। इनके इस श्रम को गौरव देते हुए हम अपने आराध्य श्री पञ्चमुखी श्री हनुमत् समेत श्री सीता राम जी का अनुग्रह उन्हे प्राप्त हो और ऐसे सत् कार्य उनसे बार-बार हो यह प्रार्थना करते हैं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का सारा भार बैगलोर के श्री माध्वमहामण्डल ने वहन किया हैं। हम उनके ऋणी हैं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में सहायक बने ज्ञात अज्ञात सहकारियों के श्रेय को हम सदा चाहते हैं।

तिजारा

राजस्थान

दिं0- 24-9-4-2011

इति शम्

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महराज

पीठाधिपति मध्वमठ, पलिमारुमठ शाखा प्रयाग

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ विरचित

महार्णव रत्न संग्रह:

श्लोक सं0 नाम विवरण

1 **केशव:=**कश्च ईशश्च = केशौ। वृतु, वर्तने = केशव:- ब्रह्म और रुद्र की रक्षा करने वाले। महाप्रलय में (ब्रह्म कल्प के अन्त में) ब्रह्म और रुद्र पद भी नाष्ट होते हैं। उस समय उस पद पर रहने वाले ब्रह्म रुद्रादि देवताओं का भी अन्त होता है। केवल केशव ही रह जाते हैं। 'यो ददाति अमृतत्वं हि' केवल भगवान ही मोक्ष को दे सकते हैं अन्य कोई नही।

3 **जनार्दन: =** जनान् अर्दयति इति जनार्दन:। दुष्ट लोगों को कष्ट देते हैं, इसके लिए भगवान का नाम जनार्दन है। हरि - दीक्षा न लिए हुए और भगवान की अर्चा पूजा न करने वाले पशु समान लोगों को जनार्दन शिक्षा (दण्ड) देते हैं। इसी हेतु यहाँ जनार्दन नाम प्रस्तुत है।

4 **अधोक्षज:=**इन्द्रियावेद्य: = इन्द्रियों से न जानने योग्य भगवान अधोक्षज:। इस संसार में जन्म, रोग, भय इत्यादि हमारी इन्द्रियों के कारण ही होते हैं। अधोक्षज की पूजा करने वाला महा भाग्यशाली है। इन्द्रियों से हम अधोक्षज को जान नही पाते।

5 **विष्णु: =**वि+ष्+लृ व्याप्तौ = विष्णु:। भगवान विष्णु सर्वत्र

व्याप्त होने के कारण सब के आधार भूत बने हैं।

6 **हरि:** = हरति इति हरि:। पाप को हरण करते हुए विशिष्ट फल को केवल हरि ही दे सकते हैं। पाप हरण के बिना मिले हुए फल से सुख का अनुभव नही होगा।

7 **हरि:** = हरति इति हरि:। कलि के कारण होने वाले महत्तर पाप को भी हरण करने वाले भगवान केवल श्री हरि हैं। अन्य कोई नही हो सकता। इसके लिए यहाँ हरि शब्द का दो बार प्रयोग किया गया है।

10 **सुरासुर नमस्कृते,** कंस, केशिघ्न - कंस, भृगु ऋषि का अंश वाला असुर था अत: उसमे देव दानव दोनों गुण थे। केशी पूर्ण रूप से राक्षस था। ऐसे देव दानव दोनों से नमस्कृत केशव। नराणां **कम्** = स्वरूप **सुखम्** यस्मिन लोके स: नरक: = वैकुण्ठं प्राप्य न याति संसारं। केशव का आराधन करने वाले वैकुण्ठ को पाने के बाद पुन: संसार को नही आते है।

24 **गोविन्द** =गो नाम पृथ्वी, विन्द - जीत लिया। हिरण्याक्ष से वराह रूप से पृथ्वी को जीत लेने के कारण भगवान का नाम गोविन्द है। ऐसे सम्पूर्ण भू मण्डल को अपने वश मे रखने वाले भगवान ही उत्तम स्थान को दे सकते हैं। इसके लिए उत्तम स्थान पाने के लिए तुम गोविन्द की आराधना करो। यह बात मरीचि ऋषि धुव्र के लिए कहते हैं।

24 **अच्युतम्** = जो च्युति रहित है वह अच्युत है। च्युति रहित स्थान में रहने वाला केवल नारायण ही च्युति रहित स्थान अन्य को दे सकते हैं। ब्रह्मादि देवताओं का स्थान भी महा प्रलय मे नाश होने वाले हैं। हे धुव्र,

तुम यदि च्युति रहित स्थान चाहते हो तो अच्युत की ही सेवा करो। हि, का प्रयोग इसको दृढ़ करने के किया गया है।

28 **विष्णु** = वि ष् लृ व्याप्तौ। सर्वत्र व्याप्त होने के कारण, ऐन्द्रमिन्द्रासन को (इन्द्र के समान स्थान को) देने मे संशय नही। हे धुव्र, तुम विष्णु की आराधना करो। धुव्र के लिए यह पुलह ऋषि ब्रह्म पुराण मे कहते हैं।

29 **विष्णु** = वि ष् लृ व्याप्तौ। सर्वत्र व्याप्त भगवान को इन तीनों लोको मे मिलने वाली इच्छित वस्तु को देने में अथवा विशेष स्थान देने में कोई श्रम नही है।

30 **विष्णु** = शंख चक्र गदा धारी विष्णु को सर्व पाप नाश करने मे कोई श्रम नही होता।

31 **अनिरुद्ध-प्रद्युम्न-संकर्षण-वासुदेव** = यह चतुर्व्यूहरूप चारोंओर रहते हुए पुनर्जन्म कैसे हो सकता है, अर्थात नही होता।

32 **वासुदेवः** = वासनात् वासुदेव: - सर्वत्र वास करने वाले वासुदेव में प्रवेश पाने वाले को पुनर्जन्म कैसे हो सकता है?

35 **हरिः** = हरति इति हरि:। सकल पाप हरण करने वाले हरि के स्मरण करने के बाद और प्रायश्चित्त करने की क्या आवश्यकता है?

36 **गोविन्द** = गो नाम वेद (शब्दराशि) विद = ज्ञान (जानना)। गोविन्द के नाम स्मरण के बिना ज्ञान मिलने वाला नही है। गोविन्द स्मरण मात्र से मूढ़ एवं कुटिल भी ज्ञानी हो जाता है।

37 **हरिः** = हरति इति हरि:। जन्म, मृत्यु, जरा इत्यादियों का

हरण करने वाले हरि का स्मरण करने वाला मोक्ष को पाता है।

38 **कृष्णः =** कर्षति इति कृष्णः। कलिमलापहम् - कलयुग के कारण होने वाले पापों को आकर्षण करते है। ऐसे श्री कृष्ण के स्मरण से घोर कलियुग का भी पाप नाश होता है।

41 **वासुदेवः =** सर्वत्र वास करने वाला भगवान गर्भ, जन्म जरा, रोग, संसार बन्धन आदि दु:खो को नाश करते हुए (उन सब स्थान एवं स्थिति में रहते हुए) वही रक्षा करते है। मोक्ष देने वाले वासुदेव हैं (वासुदेव रूप मोक्ष देता है)।

44 **गोविन्द =** गोवर्धन गिरि को उठाने वाले = गोविन्द। गोवर्धन पर्वत को उठाने वाले को भक्तों की पाप राशि क्या भार बन सकती हैं अर्थात नही। वह कपास राशि के समान है तथा एक चिनगारी मात्र से भस्म हो जाने वाला है।

45 **गोंविन्द =** वेद का उद्धार करने वाले = गोविन्द। गो अर्थात शब्द राशि। वेद के उद्धारक गोविन्द ज्ञान प्रद होते हैं। उनके आराधना के बिना गुरूपदेश के बिना दु:ख भोगना पड़ता है।

45 **वासुदेव =** वासुश्चासौ देवश्च वासुदेवः। हृदय गुहा में वास करने वाले वासुदेव की आराधना से योग्य गुरु रूप वासुदेव के कारण मोक्ष मिलता है।

46 **कृष्ण =** जीव और भगवान के बीच जीवाच्छादक, परमाच्छादक नाम के दो आवरक होते हैं। भगवान श्री कृष्ण अपने कर्षकत्व गुण के कारण इन दोनों

आवरकों (पाप संघात पञ्जर:) को नष्ट करने मे समर्थ हैं।

47 **कृष्ण** = मोक्ष चार विध के होते हैं। मोक्ष योग्य जीव प्रारब्ध कर्म के क्षय के बाद अपने योग्यतानुसार चार प्रकार के मोक्ष मे किसी एक को पाकर मूल रूपि कृष्ण मे प्रवेश करता है।

49 **नारायण** = नारायण बड़ा चोर है। नर रूप धारण किया हुआ कृष्ण रूप का चोर हमारे पापों का हरण करता है। क्योंकि भगवान कृष्ण प्रसिद्ध चोर है तथा उनका नाम भी माखन चोर है।

52 **नारायण** = नारायण देवताओं के लिए भी गुरु हैं इसके लिए वे सुरगुरु हैं। 'हतकिल्बिष:' पाप नाश करते हैं, इससे मोक्ष मिलता है।

54 **नारायण** = मन्थन से शास्त्रों का ज्ञान होता है। मूल रूपि नारायण भगवान समुद्र मंथन की प्रेरणा देते हैं। अजित रूप से मंथन चलाए। कूर्म रूप से मंदर पर्वत को उठाये। धन्वन्तरि रूप से अमृत कलश लाए। मोहिनी रूप से देवताओं को अमृत पिलाए। आलोड्य-नित्य शास्त्रों का मंथन करना चाहिए।

56 **वासुदेव** = वासुदेव सर्वत्र वास करते हैं। वेदेषु - प्रतिपादक रूप से, यज्ञेषु - फल भोक्तृत्वरूप से, तपस्सु - तप करते हुये, दानेषु- पात्र के अधिष्ठान से, तीर्थेषु - सन्निहित होकर, व्रतेषु - उद्देश्य रूप से, इष्टेषु-पूर्तेषु- अन्नादिदान रूप में ऐसे वासुदेव भगवान सारे वस्तुओं में वास करते हैं।

विषय सूची

कृष्णामृतमहार्णव

विषय सूची
सदाचारस्मृतिः

श्री बालाजी

हमारे कुल देव विश्व के एकमेव बड़ा दैव
श्री वेंकटेश्वर बालाजी के श्री चरणों में
यह ग्रन्थ समर्पित है

श्रीमद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मुलमहासंस्थान पलिमारु श्री हृषीकेश शाखा पीठ के प्रधान देव

श्री सीता समेत श्री राम भगवान

संकट मोचन श्री पंचमुखी हनुमान

कपिमुखमपि पूर्वं दक्षिणे नारसिंहम् ।
गरुड़मुखमपि पश्चात् उत्तरे सूकरास्यम् ।
ह्यवदनमतोर्ध्वं चिन्तयेद् वायुसूनुम् ।
सकलदुरितहरं रामदूतं नमामि ॥

अपेक्षितप्रद मन्त्रालय के श्री राघवेन्द्र स्वामी जी

पूज्याय राघवेन्द्राय सत्यधर्मरताय च।
भजतां कल्पवृक्षाय नमतां कामधेनवे।।
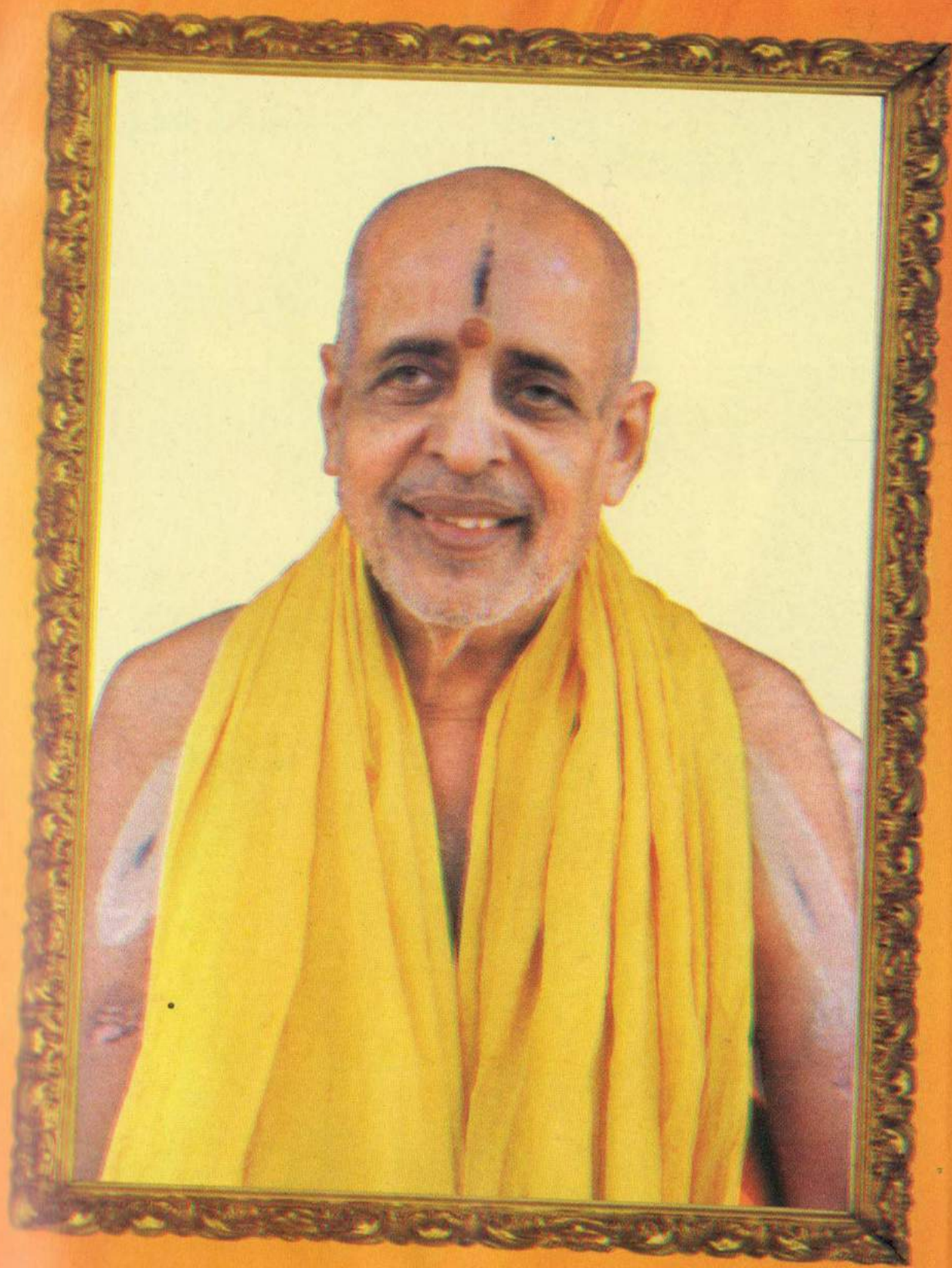
सर्वमान श्री १००८ श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी

ब्रह्मचर्य हरि प्रीति सुविद्या वादशालिनः।
इष्टदान कष्टहर्तॄन्नः विद्यामान्यान् मुनीन्नुमः।।
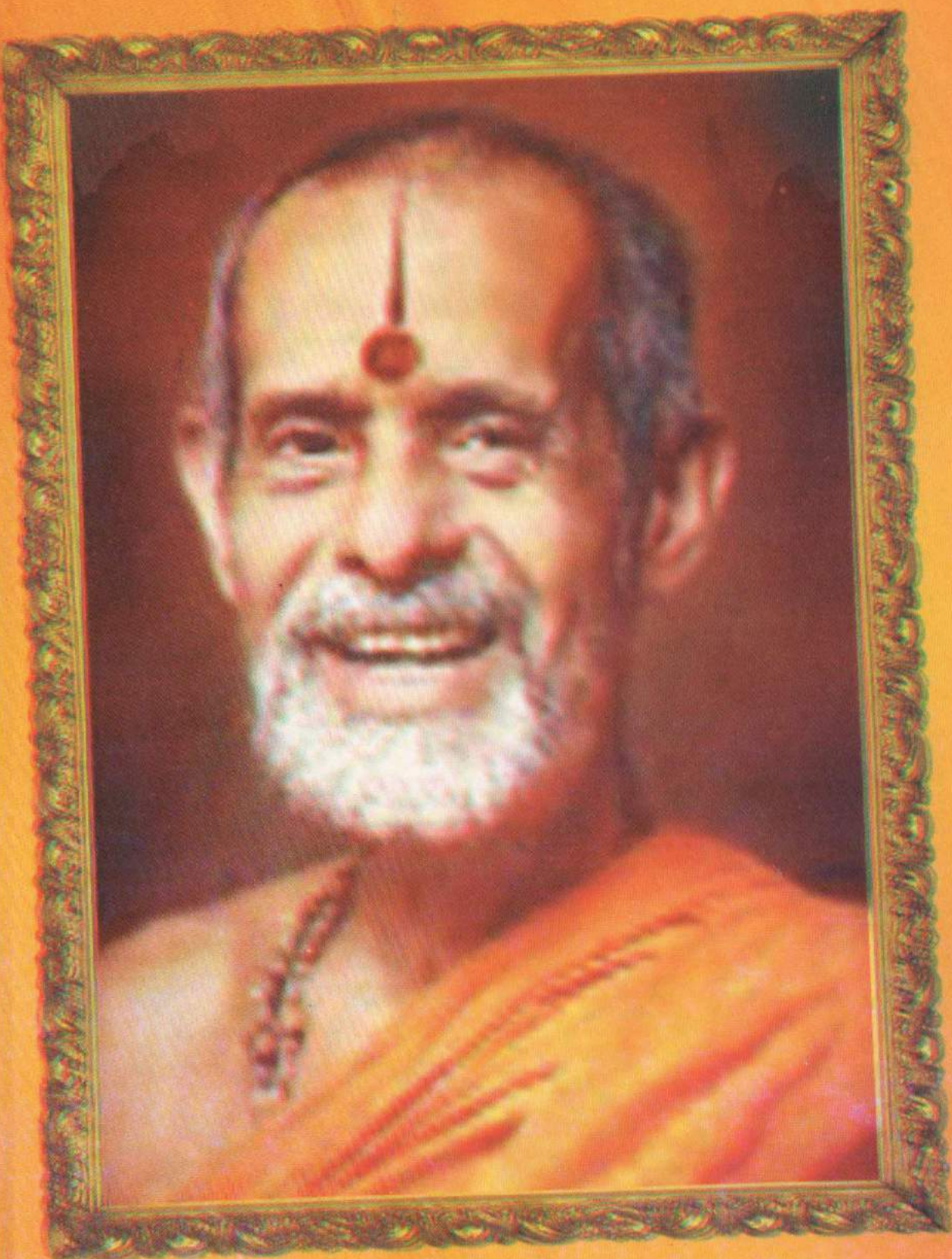
श्रीमद् जगद्गुरुमध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधीश
श्री १००८ श्री विश्वेशतीर्थ जी महाराज
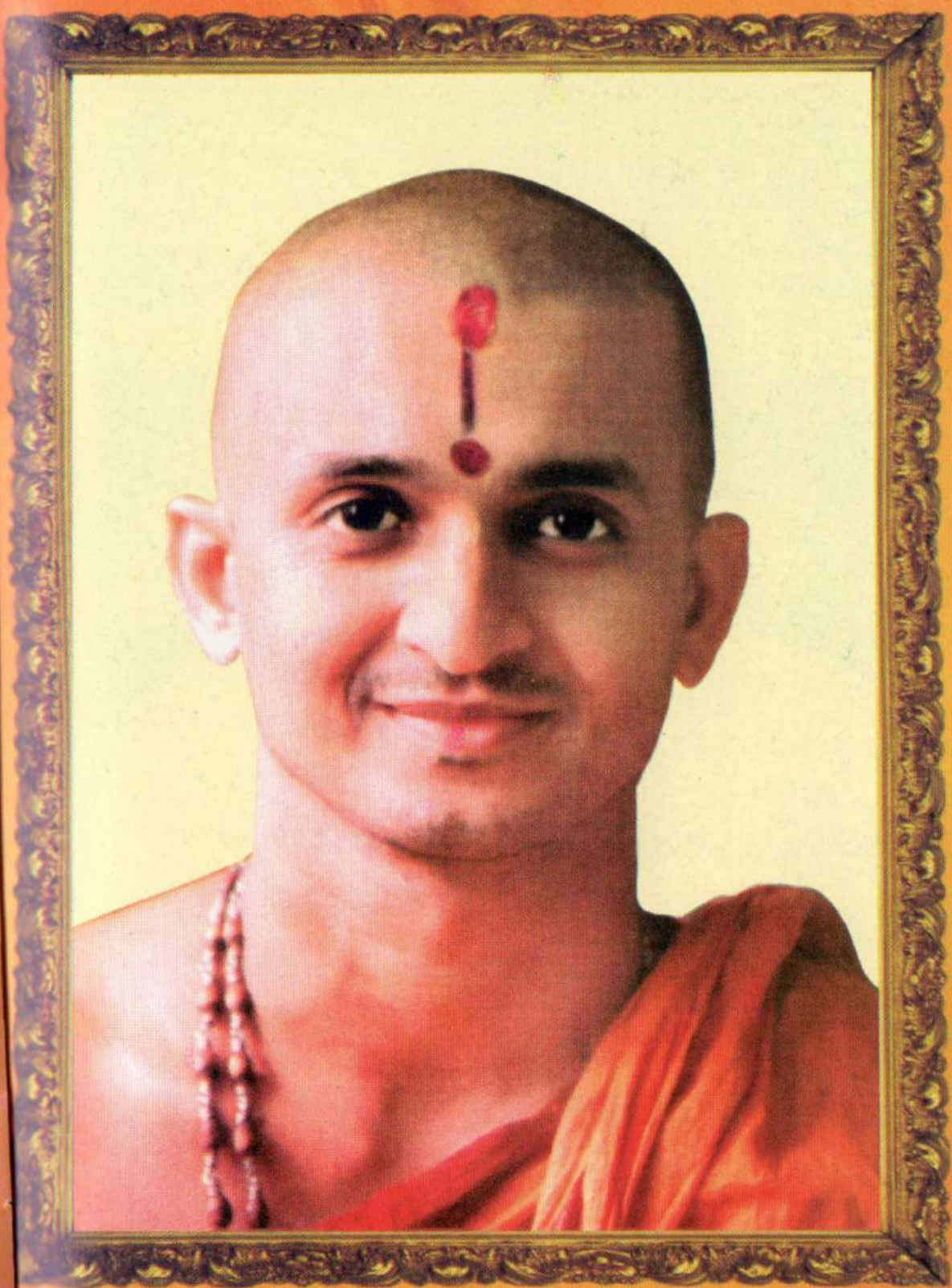
हमारे स्वरूपोद्धारक एवं दीक्षा गुरु
श्रीमद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधीश
श्री 1008 विद्याधीश स्वामी जी महाराज
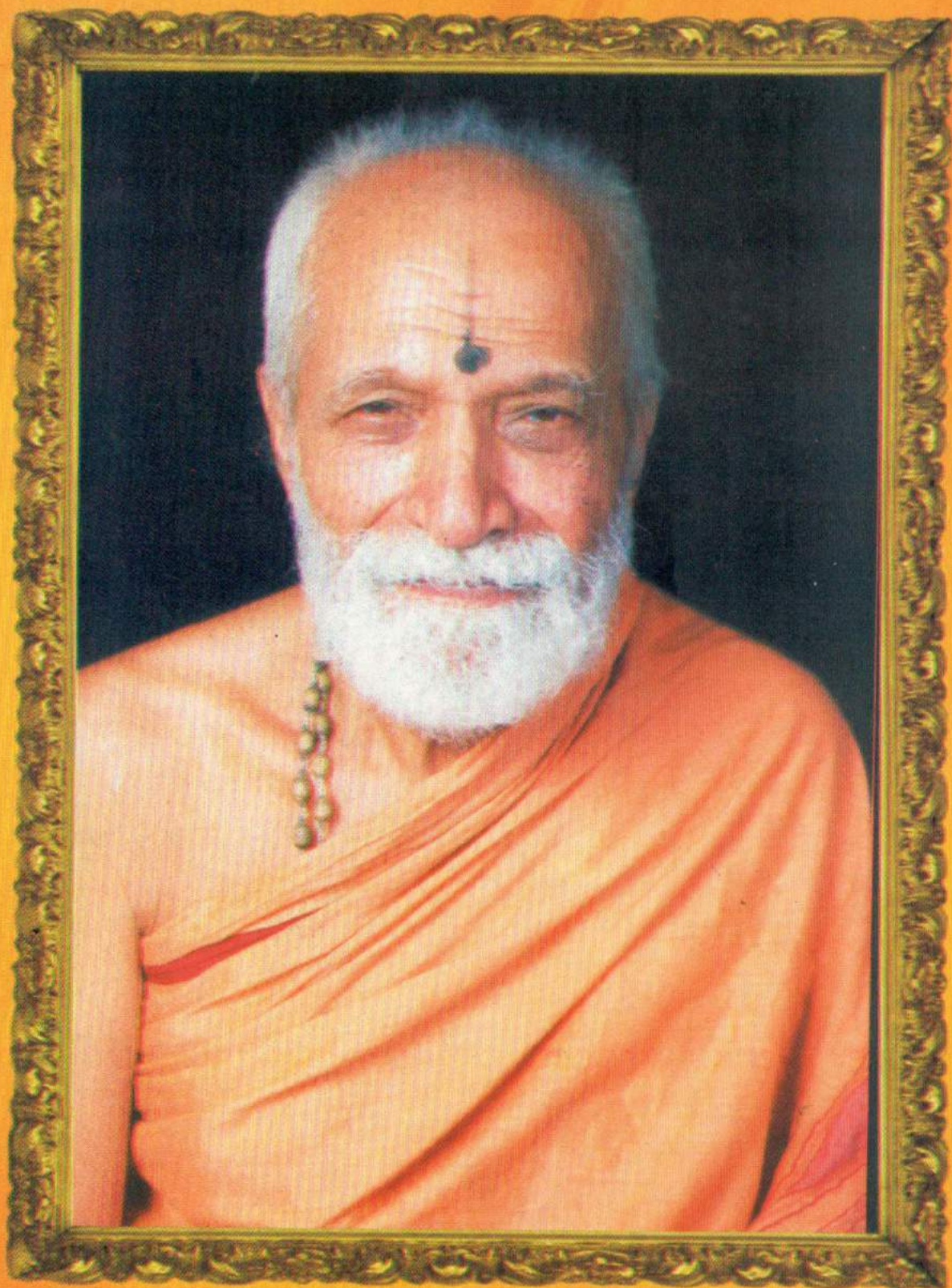
प्रयागपीठाधिपति

श्री १००८ श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी महाराज

।। श्री गुरुराजो विजयते ।।

श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यविरचितः

कृष्णामृतमहार्णवः

अर्चितः संस्मृतो ध्यातः कीर्तितः कथितः श्रुतः।
यो ददात्यमृतत्वं हि स मां रक्षतु केशवः।।1।।

पाण्डुरङ्गीवीरनारायणाचार्यरचिता हिन्दीविवृतिः

वन्दे गोविन्दमानन्दज्ञानदेहं पतिं श्रियः। श्रीमदानन्दतीर्थार्यवल्लभं परमक्षरम्।।
आचार्यचरणं नौमि **विश्वेशाख्ययतिं** सदा। यदनुग्रहलेशेन प्राप्ता विद्या विमुक्तिदा।।

प्रतिपदार्थ अर्चितः= प्रातः मध्याह्न और सायंकाल इन तीनों कालों में श्रुति पञ्चरात्र तथा स्मृति में कहे गये विधियों से पूजित तथा संस्मृतः= भक्तिपूर्वक स्मरण किए गए तथा ध्यातः= ध्यान का विषयीभूत कीर्तितः= नामग्रहण पूर्वक पुकारे गए कथितः= शास्त्र व्याख्यान के विषय, श्रुतः= गुरूपदेश द्वारा सुनाए गए यः= जो केशवः= कृष्णरूपी भगवान् अमृतत्वं= निरन्तर आनन्दरूप वैकुण्ठ को ददाति= देते हैं सः= वह श्री कृष्ण जी माम्= हमारी रक्षतु रक्षा करें।

विशेषार्थ 1. श्रीमत् मध्वाचार्य जी ने भक्तों को भगवान् की उपासना पद्धति सिखाने हेतु श्रीकृष्णामृतमहार्णव ग्रन्थ की रचना की है। कृष्णामृतमहार्णव का तात्पर्य है कि भगवान् श्री कृष्ण जी अमृत के समुद्र हैं। उस अमृत समुद्र में स्नान करने से तथा उसका पान करने से लोग मुक्ति को प्राप्त करेंगे। इस

ग्रन्थ में भगवान् की पूजा विधि, स्मरण विधि, ध्यान विधि, कीर्तनविधि, कथन विधि, स्मरण विधि, तथा ध्यान विधि इन छह विधियों को प्रतिपादित किया गया है। इसी को सूचित करने हेतु अर्चितः संस्मृतः इत्यादि छह विशेषण दिए गए हैं। इस ग्रन्थ में मुख्यतः भगवान् वेदव्यास जी कृत नानापुराणों से लिए गए वचनों से ही इन सारी विधियों का प्रतिपादन किया गया है।

तापत्रयेण संतप्तं यदेतदखिलं जगत्।

वक्ष्यामि शान्तये तस्य कृष्णामृतमहार्णवम्।।2।।

तापत्रयेण= आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक इन तीन कष्टों से सन्तप्तं= दुःखानुभूति करने वाला यदेतत्= यह जो अखिलं = पूरे जगत् है तस्य= उस जगत् ताप की शान्तये= शान्ति हेतु कृष्णामृतमहार्णवम्= कृष्णामृतमहार्णव ग्रन्थ की वक्ष्यामि= रचना करूंगा।

विशेषार्थ 2.आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक दुःखों से, अथवा शारीरिक मानसिक वाचिक दुःखों से, अथवा गर्भवास जन्म मरण इन तीनों से उत्पन्न होनेवाला दुःखों से, अथवा बाल्य यौवन वार्धक्य इन तीन अवस्थाओं में होनेवाले दुःखों से यह सम्पूर्ण जगत् व्यथित व्याकुलित उद्वेलित उद्विग्न हुआ है इस दुःख की शान्ति न घर से, न पत्नी से, न बच्चों से, न किसी मकान जायदाद इत्यादि से होती है। ये सब दुःखों के ही कारण हैं। जैसे जैसे अधिक वाहन घर इत्यादि सम्पत्ति बढाते जायेंगे वैसे वैसे ही हम और अधिक दुःखी हो जायेंगे। इस दुःख की शान्ति का उपाय एकमात्र केवल भगवान् श्री कृष्ण ही हैं। कृष्णरूपी अमृत को पान करने से ही परम सुख की

प्राप्ति होती है। इसलिए भगवान् श्री कृष्ण जी को अमृत के सागर के रूप में वर्णन किया गया है।

ते नराः पशवो लोके किं तेषां जीवने फलम्।
यैर्न लब्धा हरेर्दीक्षा नार्चितो वा जनार्दनः।।३।।

यैः= जिन लोगों ने हरेः= भगवान् की दीक्षा = दीक्षा को न लब्धः= न लिया हो वा= अथवा जनार्दनः= भगवान् श्री कृष्ण को न अर्चितः=पूजित न किया हो ते नराः= वे लोग लोके= इस संसार में पशवः=बिल्कुल जानवर ही हैं। तेषां= उन लोगों के जीवने= जीवन से किं फलम्= क्या लाभ है?

विशेषार्थ 3. इस संसार में जिस प्रकार अनेक प्रकार के प्राणी पक्षी इत्यादि जानवर जीवन यापन कर रहे हैं, उसी प्रकार जीवन यापन करना ही जिनका उद्देश्य है, ज्ञान भक्ति का कोई प्रसङ्ग जिनके जीवन में नहीं है, जिन लोगों ने भगवान् के सर्वोत्तमत्व ज्ञानपूर्वक भक्ति की अन्तरङ्ग दीक्षा अथवा ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण तप्तमुद्राधारण इत्यादि बहिरङ्गदीक्षा भी नहीं ली हो तथा जीवन में कभी भी भगवद् आराधना न की हो, वे लोग जानवर के समान होंगे।

संसारेस्मिन् महाघोरे जन्मरोगभयाकुले।
अयमेको महाभागः पूज्यते यदधोक्षजः।।४।।

[illegible]गरोगभयाकुले = गर्भवासादि जन्म दुःख तथा त्रिविध भयों के कारण [illegible]न्त पीडित महाघोरे = अत्यन्त भयङ्कर अस्मिन्= इस संसार में [illegible]क्षजः= भगवान् श्री कृष्ण जी पूज्यते= पूजित हो रहे हैं इति यत्= यह [illegible] अयम्=यह एकः= एक महाभागः= महाभाग्य है।

विशेषार्थ 4. गर्भवास बाल्ययौवन स्थाविर इत्यादि सब अवस्थाओं में नाना प्रकार के भय से पीडित इस संसार में भगवान् की पूजा करना ही अत्यन्त मुख्य भाग्य है। इससे ही लोग संसारभयरूपी बन्धन से मुक्त हो सकते हैं।

स नाम सुकृती लोके कुलं तेनाभ्यलंकृतम्।

आधारस्सर्वभूतानां येन विष्णुः प्रसादितः।। ५।।

येन= जिस पुरुष ने सर्वभूतानाम् आधारः= सर्वभूतों के आधार विष्णुः = भगवान् विष्णु को प्रसादितः= प्रसन्न कर दिया हैं सः= वही पुरुष लोके= इस भूमिं में सुकृती नाम= पुण्यवान् शब्द से कहा जाता है। तेन= उस पुरुष ने कुलं= अपने कुल को अभ्यलंकृतम्= सजाया है।

यज्ञानां तपसां चैव शुभानां चैव कर्मणाम्।

तद्विशिष्टफलं नृणां सदैवाराधनं हरेः।। ६।।

हरेः सदैव आराधनं= जो भगवान् की नित्य पूजा इत्यादिरूप आराधना की जाती है तत्= वह आराधना ही नृणां= मनुष्यों के द्वारा किये गये यज्ञानां= तपसां च एव शुभानां कर्मणां च एव= अश्वमेध इत्यादि यज्ञों का, कृच्छ्र-चान्द्रायण एकादशी इत्यादिरूप तपस्याओं का, तथा सन्ध्यावन्दन इत्यादि दैनंदिन शुभकार्यों का विशिष्टफलं= अत्यन्त उत्कृष्ट फलस्वरूप है।

विशेष- 5-6. मनुष्य अपने जीवन में अच्छी गति को प्राप्त करने के लिये यज्ञ-याग-कृच्छ्र चान्द्रायण इत्यादि अनेक प्रकार का शुभ कार्य करता रहता है। इन सारे अच्छे कर्मों के फल है भगवदाराधना करने का अवकाश मिलना। क्यूं कि भगवदाराधना का भाग्य सब को प्राप्त नहीं होता है। जिन लोगों ने अनेक जन्मों से पुण्य का अर्जन किया है उन्हीं लोगों को भगवत्पूजा करने का

।।ग्य प्राप्त होता है। अतः इस सदवकाश का लाभ उठाकर प्रतिदिन ।गवान् की अर्थना कर भगवान् को संतुष्ट करना चाहिये। वही पुरुष पुण्यवान् कहलाया जाता है। उस पुरुष अपने सारे वंशपरम्परा का उद्धार करता है।

कलौ कलिमलध्वंसिसर्वपापहरं हरिम्।

येऽर्चयन्ति यदा नित्यं तेऽपि वन्द्या यथा हरिः॥७॥

कलौ= कलियुग में ये नराः= जो लोग नित्यं= प्रतिदिन कलिमल-ध्वंसिसर्वपापहरं हरिं= कलियुग के प्रभाव से उत्पन्न होनेवाला अज्ञान इत्यादिरूप का गन्दगी को नाश करनेवाला तथा सब प्रकार के पापों को नष्ट करनेवाला हरि भगवान् को अर्चयन्ति= पूजा करते हैं, ते अपि=वह पूजा करने वाले लोग भी यथा हरिः वन्द्यः= जैसे परमात्मा प्रणम्य है उसी प्रकार वन्द्याः =वन्दनीय हैं।

नास्ति श्रेयस्तमं नृणां विष्णोराराधनान्मुने।

युगेऽस्मिंस्तामसे लोके सततं पूज्यते नृभिः॥८॥

मुने= हे मुनिवर ! अस्मिन् तामसे लोके=इस तमोगुण प्रधान कलियुग में नृणां= मनुष्यों को विष्णोः आराधनात्= हरि की पूजा को छोडकर दूसरा श्रेयस्तमं= अत्यन्त श्रेयस्कर मार्ग नास्ति= नहीं हैं। इस कारण से हरि नृभिः= मनुष्यों के द्वारा सततं= प्रतिक्षण पूज्यते =पूजित किया जाता है।

विशेष- 7-8. कृतयुग-त्रेतायुग-द्वापरयुग में लोगों में कार्यक्षमता बहुत अधिक होती थी। अतः वे लोग हजारों सालों तक निराहार होकर समाधि में बैठकर तप करते थे। अनेक विध यज्ञयागादिरूप सत्कर्म कर सकते थे। परन्तु कलियुग में मनुष्यों के सामर्थ्य बहुत कम है। अतः केवल भगवत्पूजा ही कर

सकते हैं। भगवत्पूजा से ही कलियुग में सद्गति प्राप्त होती है। इस लिये जैसे परमात्मा श्रीहरि पूजनीय है वैसे उन की पूजा करनेवाले लोग भी पूजनीय हैं। अतः घर में कोई वैष्णव आने पर उन का विधिवत् संमान-सत्कार करना चाहिये।

अर्चिते देवदेवेशे शङ्खचक्रगदाधरे।

अर्चिताः सर्वदेवाः स्युर्यतः सर्वगतो हरिः ॥ ९ ॥

यतः= क्यों कि हरिः श्रीहरिः= श्रीहरि सर्वगतः= सभी प्रकार के जीवित या अजीवित चेतन-अचेतन पदार्थों में रहता है अतः शङ्खचक्रगदाधरे= शङ्ख चक्र और गदा को धारण किए हुऐ देवदेवेशे= देवों की देवता श्रीहरि को अर्चिते= अर्चना करने पर सर्वदेवाः= बाकी सब ब्रह्मा महेश्वर इन्द्र सूर्य गणपति काली इत्यादि देवताएं भी पूजिताः स्युः= पूजित हो जायेंगी।

स्वर्चिते सर्वलोकेशे सुरासुरनमस्कृते।

केशवे कंसकेशिघ्ने न याति नरकं नरः ॥ १० ॥

सुरासुरनमस्कृते= देवताओं एवं असुरों के लिये भी प्रणम्य कंसकेशिघ्ने= कंस तथा केशि इत्यादि दुष्टों के संहारक सर्वलोकेशे= सर्वलोकों के अधिपति केशवे= भगवान् श्रीकृष्ण के स्वर्चिते= अत्यन्त भक्ति से पूजित होने पर नरः =पूजा करनेवाला मनुष्य नरकं न याति=नरक को प्राप्त नहीं करेगा।

विशेष-9-10. इस संसार में जितने भी देवी देवताए हैं वे सभी श्रीकृष्ण के अधीन हैं। श्रीकृष्ण के दास हैं। इन सभी देवताओं में स्वयं श्रीकृष्ण संनिहित होकर उस देवता को की गयी पूजा को स्वीकार करता है। अतः भगवान् को

साक्षात् अर्चना करने पर सब देवताओं की अर्चना स्वयं हो जाती है। इस श्रीकृष्ण भगवान् की पूजा करने के बाद मनुष्य कभी भी नरक में नहीं गिरेगा।

सकृदभ्यर्च्य गोविन्दं बिल्वपत्रेण मानवः।
मुक्तिभागी निरातङ्की विष्णुलोके चिरं वसेत्।। ११।।

मानवः=मनुष्य बिल्वपत्रेण= बेल के पत्रों से सकृत्=एक बार गोविन्दम्= विष्णु भगवान् को अभ्यर्च्य= पूजा कर मुक्तिभागी= पापों से मुक्त होकर निरातङ्की= आतङ्कों से मुक्त होकर विष्णुलोके= वैकुण्ठ में चिरं= अनन्तकाल तक वसेत्= वास करेगा।

शंकरः-

सकृदभ्यर्चितो येन देवदेवो जनार्दनः।
यत्कृत्यं तत्कृतं तेन संप्राप्तं परमं पदम्।। १२।।

येन= जिस पुरुष ने देवदेवो जनार्दनः = देवताओं के भी देवता श्रीकृष्ण भगवान् की सकृत् अभ्यर्चितः=एक बार पूजा कर लिया है तेन= उस पुरुष ने यत् कृत्यं= जो कर्तव्य है तत् कृतम्= उस को कर लिया है। तेन= उस पुरुष ने परमं पदं संप्राप्तं= परम पद वैकुण्ठ को प्राप्त कर लिया है।

सकृदभ्यर्चितो येन हेलयाऽपि नमस्कृतः।
स याति परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम्॥ १३॥

येन = जिस पुरुष ने जनार्दन श्रीकृष्ण को सकृत् अभ्यर्चितः = एक बार पूजा कर लिया है, अथवा हेलयापि= अनादर से भी नमस्कृतः= नमस्कार कर

लिया है, सः= वह पुरुष सुरैरपि दुर्लभं= देवताओं को भी दुर्लभ यत्= जो परमं स्थानं याति= परम गति वैकुण्ठ है उस को प्राप्त करता है।

नारदः-

समस्तलोकनाथस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः।

साक्षाद्भगवतो विष्णोः पूजनं जन्मनः फलम्॥ १४॥

समस्तलोकनाथस्य= सारे लोकों के रक्षक देवदेवस्य= इन्द्र इत्यादि देवताओं के देवता शार्ङ्गिणः= शार्ङ्गनामक धनुष को धारण करनेवाले साक्षात् भगवतः = मुख्य भगवान् विष्णोः = विष्णु के पूजनं= पूजा का अवसर मिलना जन्मनः= इस जन्म का फलं= सबसे बडा प्रयोजन है।

विशेष- भगवान् को किसी बहाने से भी अनादर से भी कभी एक बार नमस्कार करने पर एक ही बार पूजा करने पर उस मनुष्य का सैकडों जन्मों का पाप नष्ट होकर वह मनुष्य वैकुण्ठ में अनन्तकाल तक विहार करता है। अजामिल ब्राह्मण ने सारे जीवन सब तरह के दुर्व्यवहार करते हुए भी कभी अन्तकाल में पुत्र को बुलाने हेतु एक बार नारायण शब्द का उच्चारण किया। उस को केवल नारायणशब्दोच्चारण से ही वैकुण्ठलोक प्राप्त हो गया ।

भगवान् शब्द का मुख्य अर्थ विष्णु ही है। पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, कीर्ति, श्री, ज्ञान, विज्ञान यह छह गुण जिस मे होते हैं वह भगवान् है। विष्णु में यह गुण मुख्यतया हैं, तथा बाकी देवताओं में जो ऐश्वर्य इत्यादि गुण हैं वे विष्णु के द्वारा प्रदत्त ही हैं। अतः मुख्य भगवान् विष्णु की पूजा करने का मौका मिलना इस जन्म का सबसे बडा सौभाग्य है। यह नारद जी का वचन है।

पुलस्त्यः-

भक्त्या दूर्वाङ्कुरैः पुंभिः पूजितः पुरुषोत्तमः।

हरिर्ददाति हि फलं सर्वयज्ञैश्च दुर्लभम्॥ १५॥

पुंभिः= मनुष्यों के द्वारा भक्त्या= भक्तिपूर्वक दूर्वाङ्कुरैः= दूर्वा के अङ्कुरों से पूजितः= पूजित किये गये पुरुषोत्तमः=मनुष्यों से उत्तम हरिः= श्रीहरि सर्वयज्ञैश्च दुर्लभम्= अश्वमेध इत्यादि यज्ञों से भी दुष्प्राप्य फल= फल को ददाति= देते हैं।

विधिना देवदेवेशः शङ्खचक्रधरो हरिः।

फलं ददाति सुलभं सलिलेनापि पूजितः॥ १६॥

देवदेवेशः= देवताओं का भी देवता शङ्खचक्रधरः= शङ्ख और चक्र धारण करनेवाले हरिः= श्रीहरि विधिना= विध्युक्तरीत्या सलिलेनापि पूजितः= पानी से भी पूजित किये जाने पर सुलभं फलं ददाति= अनायास ही मुक्ति फल देते हैं।

नरके पच्यमानस्तु यमेन परिभाषितः।

किं त्वया नार्चितो देवः केशवः क्लेशनाशनः॥ १७॥

मरणानन्तर नरके पच्यमानः तु =नरक में नानाविध यातना अनुभव करते हुए यह जीव 'क्लेशनाशनः=सारे क्लेशों के नाश करनेवाला देवः= दिव्य केशवः= श्रीकृष्ण जी को किं त्वया नार्चितः= क्या तुम ने पूजा नहीं किया ?' इस प्रकार यमेन= यम के द्वारा परिभाषितः= पूछा जाता है।

विशेष 15-17. यह तीनों श्लोक पुलस्त्य ऋषि के वचन हैं। श्रीहरि को प्रसन्न करने के लिये बहुत सारे साधनों की आवश्यकता नहीं हैं। भक्तिपूर्वक दूर्वा पत्र

(घास) से पूजा करने पर भी भगवान् संतुष्ट हो जाते हैं। बहुत सारे भोग लगाने क़ी आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार पूजा अत्यन्त सुलभ सुकर होने पर भी जो पुरुष भगवान् की पूजा न कर मरणोपरान्त नरक में नानाविध यातनाओं का अनुभव करता है तब यमजी उन से पूछते है कि 'तुम कभी भी भगवान् की पूजा नहीं किये हो ? यदि एक बार भी भगवान् की पूजा किया हुआ होता तब नरक के अनुभव करने की आवश्यकता नहीं होती'

धर्मः-

द्रव्याणामप्यभावे तु सलिलेनापि पूजितः।

यो ददाति स्वकं स्थानं स त्वया किं न पूजितः।। १८।।

द्रव्याणां अभावे अपि तु= बहुत द्रव्य न होने की स्थिति में सलिलेनापि पूजितः= केवल पानी से पूजित किये हुए यः= जो भगवान् स्वकं स्थानं= अपने स्थान वैकुण्ठ को ददाति= देते हैं सः= उस भगवान् श्रीकृष्ण को त्वया= तुम ने पूजितः न किं= पूजा नहीं किया है क्या ?

नरसिंहो हृषीकेशः पुण्डरीकनिभेक्षणः।

स्मरणान्मुक्तिदो नृणां स त्वया किं न पूजितः।। १९।।

हृषीकेशः= इन्द्रियों के अधिष्ठाता पुण्डरीकनिभेक्षणः= कमल के पत्ते जैसे आँखोवाले नृणां= मनुष्यों को स्मरणात्= स्मरणमात्र से मुक्तिदः=मोक्ष देनेवाले सः नरसिंहः= उस नरसिंह भगवान् की त्वया= तुम ने पूजितः न किं= पूजा नहीं किया है क्या?

गर्भस्थिता मृता वाऽपि मूषितास्ते सुदूषिताः।

न प्राप्ता यैर्हरेर्दीक्षा सर्वदुः खविमोचनी॥२०॥

सर्वदुःखविमोचिनी= सव प्रकार के दुःखों का नाश करनेवाली हरेः दीक्षा= विष्णु दीक्षा को यैः न प्राप्ता= जो लोगों ने नहीं लिया हो ते= वे लोग गर्भस्थिताः= गर्भस्थ हैं, अथवा=अथवा मृताः=मृत हैं, मूषिताः= मूर्च्छावस्था में हैं, सुदूषिताः= ब्रह्महत्यादिदोष करनेवाले हैं।

विशेष- 18-20. यह तीनों श्लोक यमजी के वचन हैं। जो मनुष्य भूलोक में अनेक प्रकार के पाप कर्म कर मरणानन्तर नरक पर जाते हैं तब यम जी उन लोगों से पूछते हैं कि क्या तुम लोगों ने कभी भी श्रीकृष्ण की पूजा नहीं की? यदि एक बार भी केवल पानी, पत्ते जैसे अत्यन्त साधारण द्रव्यों से पूजा करलिया होता तब नरक में आने की स्थिति नहीं होती । केवल स्मरणमात्र से सारे पापों से बचानेवाले श्रीकृष्ण परमात्मा की पूजा क्यूं एक बार भी नहीं किया ? जिन्हों ने परमात्मा की दीक्षा नहीं प्राप्त किया है वे लोग जिन्दा होने पर भी गर्भस्थशिशु जैसे किसी काम के नहीं हैं, मरे गये लोगों जैसै हैं, मूर्च्छावस्था में रहनेवाले लोग जैसे हैं जो कुछ भी नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार यमजी पापियों को डाटते हैं।

मार्कण्डेयः-

सकृदभ्यर्चितो येन देववेवो जनार्दनः।

यत्कृत्यं तत्कृतं तेन संप्राप्तं परमं पदम्।। २१।।

येन= जिस पुरुष ने सकृत्= एक बार भी देवदेवः= देवों के देव जनार्दनः असुरों के संहार करनेवाले श्रीकृष्ण जी को अभ्यर्चितः= पूजा किया है तेन उस पुरुष ने यत् कृत्यं =जो अवश्य कर्तव्य है तत् कृतं= उस कार्य कर लिया है। उस पुरुष ने परमं पदम्= परम पद मोक्ष को संप्राप्तं= प्राप्त कर लिया है।

धर्मार्थकाममोक्षाणां नान्योपायस्तु विद्यते।

सत्यं ब्रवीमि देवेश हृषीकेशार्चनादृते॥२२॥

देवेश= हे शंकर भगवन् ! हृषीकेशार्चनात् ऋते= इन्द्रियों के स्वामी श्रीकृष्ण जी की पूजा के बिना धर्मार्थकाममोक्षाणां= धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारं पुरुषार्थों को प्राप्त करने के लिये अन्योपायः तु= दूसरा कोई उपाय न विद्यते= नहीं हैं।

तस्य यज्ञवराहस्य विष्णोरमिततेजसः।

प्रणामं ये प्रकुर्वन्ति तेषामपि नमो नमः॥२३॥

अमिततेजसः=अमितशक्तिसंपन्न विष्णोः= सर्वत्र व्याप्त तस्य यज्ञवराहस्य= जो यज्ञस्वामी वराह भगवान् हैं उन को ये= जो लोग प्रणामं= नमस्का प्रकुर्वन्ति = करते हैं तेषाम् अपि= उन विष्णुभक्तों को भी नमो नमः= बा बार प्रणाम।

विशेष- ये तीनों श्लोक मार्कण्डेय ऋषि के हैं। जिस पुरुष ने एक भी बा भगवान् की अर्चना उपासना कर लिया है उस पुरुष का पूर्णजीवन सार्थक है उस पुरुष ने जीवन के मुख्य कर्तव्य कर लिया है, वह पुरुष निश्चित रूप र मोक्ष को प्राप्त करता है। इस जीवन के मुख्य उद्देश्य धर्म अर्थ काम मोक्ष या चार पुरुषार्थों के परिधि में ही चलतीं हैं। इन चारों पुरुषार्थों का उपाय तं भगवान् की आराधना ही है। भगवदाराधना को छोडकर किसी भी दूसं उपाय से इन पुरुषार्थों की प्राप्ति नहीं होगी। अतः ऐसे अनन्त शक्तिसंपन्न सर्वगत सर्वज्ञ यज्ञरक्षक वराहरूपी भगवान् (जो दशावतारों में से एक है को जो लोग प्रतिदिन प्रणाम करते हैं उन विष्णुभक्तों को भी प्रति दिन बा बार प्रणाम करना चाहिये।

मरीचिः-

अनाराधितगोविन्दैर्नरैः स्थानं नृपात्मज।

न हि संप्राप्यते श्रेष्ठं तस्मादाराधयाच्युतम् ॥२४॥

नृपात्मज= उत्तानपादराजा के पुत्र ध्रुव! अनाराधितगोविन्दैः =जिन लोगों ने भगवान् की आराधना नहीं किया है नरैः= वैसे लोग श्रेष्ठं स्थानं= उत्तम पद को न हि संप्राप्यते= नहीं प्राप्त कर सकते हैं। तस्मात्= इसलिये अच्युतं= च्युतिरहित श्रीकृष्ण भगवान् की आराधय= आराधना करो।

विशेष- मरीचि ऋषि ध्रुव को संबोधित कर बोल रहे हैं कि हे ध्रुव! भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना के बिना अच्छे पद प्राप्त नहीं होगा। इस लिये तुम भगवान् की आराधना करों, ताकि तुम भी अच्छे स्थान प्राप्त कर सकोगे।

अत्रिः-

परः पराणां पुरुषस्तुष्टो यस्य जनार्दनः।

स चाप्नोत्यक्षयं स्थानमेतत्सत्यं मयोदितम्॥२५॥

पराणां= श्रीकृष्ण देवताओं से भी परः = श्रेष्ठ पुरुषः= सर्व शरीरों में रहनेवाले जनार्दनः= असुरसंहारी श्रीकृष्ण यस्य= जिस पुरुष की भक्ति से तुष्टः =संतुष्ट होते हैं सः च= वह पुरुष अक्षयं स्थानं= अनन्तकाल तक नष्ट न होनेवाले स्थान को आप्नोति= प्राप्त करता है। मया उदितम्= मेरे द्वारा कहा गया एतत्= यह विषय सत्यम्= सत्य है।

अङ्गिराः-

यस्यान्तः सर्वमेवेदमच्युतस्याव्ययात्मनः।

तमाराध्य गोविन्दं स्थानमग्र्यं यदिच्छसि ॥२६॥

यदि=यदि अग्र्यं स्थानं= उत्तम स्थान को इच्छसि= प्राप्त करना चाहते है अव्ययात्मनः= नष्ट न होनेवाला शरीर धारण किये हुए अच्युतस्य= वृद्धि ह्वासरहित यस्य= जिस श्रीकृष्ण के अन्तः=शरीर के अन्दर ही इदं सर्वम् = यह पूरा विश्व है तं= वैसे गोविन्दं= श्रीकृष्ण जी की आराधय= आराधना करो।

विशेष- 25 श्लोक अत्रिऋषि का तथा श्लोक 26 अङ्गिरा ऋषि का है। यदि अच्छे स्थान प्राप्त करना चाहते हो तो सर्वान्तर्यामी च्युतिरहित नित्यशरीरवाले गोविन्द की आराधना करो। जिस भगवान् के शरीर के अन्दर ही सब विश्व है वह भगवान् ही संसार से पार करवाकर मोक्ष देते हैं। जिस पुरुष की भक्ति से भगवान् संतुष्ट होते हैं वह पुरुष मोक्ष प्राप्त करता है।

पुलस्त्यः-

परं ब्रह्म परं धाम योऽसौ ब्रह्म सनातनम्।

तमाराध्य हरिं याति मुक्तिमप्यतिदुर्लभाम्।। २७।।

यः असौ= यह जो हरि परं ब्रह्म= सर्वजगद्विलक्षण सर्वगुणपूर्ण परं धाम =उत्तम तेजोरूप है तं= उस सनातनं नित्य ब्रह्म= पर ब्रह्म हरिं= श्रीहरि की आराध्य= आराधना कर अतिदुर्लभाम् अपि = अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी मुक्तिं =मोक्ष को याति= प्राप्त करता है।

पुलहः-

ऐन्द्रमिन्द्रः परं स्थानं यमाराध्य जगत्पतिम्।

प्राप यज्ञपतिं विष्णुं तमाराधय सुव्रत।। २८।।

सुव्रत= हे अच्छे व्रत करनेवाला ध्रुव ! यं जगत्पतिं= जो सर्वजगद्रक्षक विष्णु की आराध्य= आराधना कर इन्द्रः =वर्तमान इन्द्र ने ऐन्द्रं परं स्थानं= अत्युत्तम इन्द्र पदवी को प्राप= प्राप्त किया है तं= उस यज्ञपतिं= यज्ञस्वामी विष्णुं= विष्णु की आराधय= आराधना करों।

प्राप्नोत्याराधिते विष्णौ मनसा यद्यदिच्छति।

त्रैलोक्यान्तर्गतं स्थानं किमु लोकोत्तरोत्तरम्।। २९।।

मनसा = मन से यद्यत् = जो जो त्रैलोक्यान्तर्गतं स्थानं= भूमि स्वर्ग पाताल रूपी त्रिलोक में अन्तर्गत स्थान की इच्छति= इच्छा करता है उस स्थान को विष्णौ आराधिते= विष्णु भगवान् की आराधना करने पर प्राप्नोति= प्राप्त करता है। किमु लोकोत्तरोत्तरं= उत्तमोत्तम लोकों के बारे में क्या कहना है ?

येऽर्चयन्ति सदा विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरम्।

सर्वपापविनिर्मुक्ताः परं ब्रह्म विशन्ति ते॥ ३०॥

ततोऽनिरुद्धं देवेशं प्रद्युम्नं च ततः परम्।

ततः संकर्षणं देवं वासुदेवं परात्परम्॥ ३१॥

वासुदेवात् परं नास्ति इति वेदान्तनिश्चयः।

वासुदेवं प्रविष्टानां पुनरावर्तनं कुतः॥ ३२॥

[illegible] जो लोग शङ्खचक्रगदाधरम्= शङ्ख चक्र गदाओं को धारण करनेवाले विष्णुं= विष्णु भगवान् की सदा= सर्वदा अर्चयन्ति= पूजा करते हैं ते = वे लोग सर्वपापविनिर्मुक्ताः= सब पापों से मुक्त होकर परं ब्रह्म विशन्ति= पर ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।

ततः= अंशिरूप ब्रह्मप्राप्ति के लिये देवेशम् अनिरुद्धं= देवताओं के स्वामी अनिरुद्ध रूप को विशन्ति= प्राप्त करते हैं। ततः परं= उस के बाद प्रद्युम्नं विशन्ति= प्रद्युम्नरूप को प्राप्त करते हैं। ततः=उस के बाद संकर्षणं देवं= संकर्षणरूपी भगवान् को विशन्ति=प्राप्त करते हैं। उस के बाद परात्परम्= सर्वोत्तम वासुदेवं= वासुदेवरूपी अंशि भगवान् को विशन्ति= प्राप्त करते हैं। वासुदेवात् परं= वासुदेवरूपी अंशि भगवान् से श्रेष्ठ कोई नास्ति= नहीं है इति= इस प्रकार वेदान्तनिश्चयः= वेदान्तशास्त्र का निर्णय है। इस कारण से वासुदेवं प्रविष्टानां= वासुदेव रूपी भगवान् को प्राप्त किए हुए लोगों को पुनरावर्तनं= इस संसार में पुनः आना कुतः= क्यूं होगी ? (वासुदेवरूपी भगवान् को प्राप्त करने के बाद संसार नहीं होगा)

विशेष 27-32. श्लोक 27 पुलस्त्यऋषि का वचन है। तथा 28 से 32 तक श्लोक पुलह ऋषि के हैं।

श्रीहरि को ही सर्वोत्तम गुणपूर्ण होने के कारण नित्य अनादि ब्रह्म इत्यादि शब्दों से पुकारा जाता है। उस हरि की आराधना करने से निश्चित रूप से मुक्ति प्राप्त हो जायेगी।

पुलह ऋषि ध्रुव को संबोधिक कर बोल रहे हैं कि वर्तमान युग में जो इन्द्र है वह भी श्रीहरि की आराधना कर ही अत्युत्तम इन्द्र पदवी को प्राप्त कर चुके हैं। तुम भी अच्छे स्थान को यदि प्राप्त करना चाहते हो तो उस विष्णु की आराधना करों। उस सर्वोत्तम विष्णु के प्रसन्न होने पर तीनों लोकों के अन्तर्गत सभी मन चाहा पद मिल जायेगा।

30 से 32 तक श्लोकों मे परब्रह्म प्राप्ति किस प्रकार से होती है इस विषय का प्रतिपादन कर रहे हैं। अनिरुद्ध प्रद्युम्न संकर्षण वासुदेव यह चार रूप धारण किये हुए परब्रह्म की प्राप्ति क्रमशः होती है।

प्रथमतः अनिरुद्ध रूप की प्राप्ति, तदनन्तर प्रद्युम्न रूप की प्राप्ति, इस के बाद संकर्षणरूप की प्राप्ति, अन्त में वासुदेवरूप की प्राप्ति होती है। वह वासुदेवरूप ही परब्रह्म है। वासुदेवरूप की प्राप्ति के बाद कोई दूसरा रूप प्राप्तव्य नहीं होता है। उस वासुदेवरूप को प्राप्त हुए लोग इस संसार में पुनः नहीं आयेंगे। वही अन्तिमस्थान है।

यद्यपि अनिरुद्ध-प्रद्युम्न-संकर्षण-वासुदेव इन चारों रूपों में कोई भेद नहीं है। चारों भी परब्रह्म ही हैं। तथापि अनिरुद्ध इत्यादिरूपों से भगवान् मार्ग में उपस्थित रहते हैं। अतः प्रथमतः अनिरुद्धप्राप्ति इत्यादि क्रम शास्त्रों मे कहा गया है।

आत्रेयः-

यो यानिच्छेन्नरः कामान् नारी वा वरवर्णिनी।

तान्समाप्नोति विपुलान्समाराध्य जनार्दनम्।। ३३।।

यो नरः= जो पुरुष वा= अथवा वरवर्णिनी नारी= उत्तम स्त्री यान् कामान्= जिन जिन विषयवस्तुओं की इच्छेत्= इच्छा करते हैं जनार्दनं= असुरसंहारी श्रीकृष्ण जी की समाराध्य= आराधना कर विपुलान् तान्= अत्यन्त अधिक रूप से उन काम्य वस्तुओं को समाप्नोति= प्राप्त करता है।

विशेष- इस लोक मे कोई पुरुष अथवा स्त्री जो कुछ भी वस्तु को चाहते हैं, जैसे धन-धान्य-पशु-पुत्र-वस्त्र-वाहन-गृह इत्यादि, तो भगवान् की आराधना कर इन सारे वस्तुओं को प्राप्त कर सकते है।

यह श्लोक आत्रेय ऋषि का है।

ब्रह्मा-

बाहुभ्यां सागरं तर्तुं क इच्छेत पुमान् भुवि।

वासुदेवमनाराध्य को मोक्षं गन्तुमिच्छति॥ ३४॥

भुवि= इस भूमण्डल में कः= कौन पुरुष बाहुभ्यां= अपने हाथों से सागरं तर्तुम्= समुद्र को पार=करने की इच्छेत्= इच्छा करता है? उसी प्रकार वासुदेवं= वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण की अनाराध्य= आराधना किये बिना कः= कौन पुरुष मोक्षं गन्तुं= मोक्ष जाने की इच्छति= इच्छा करता है ?

विशेष - ब्रह्माजी पूछते हैं कि नौका की सहायता बिना कौन अपने कंधे से समुद्र पार कर सकता है ? वासुदेव श्रीकृष्ण की उपासना के बिना कौन मोक्ष को प्राप्त कर सकता है ? इस का अर्थ यह है कि जैसे कोई पुरुष अपने हाथों से तैरकर समुद्र पार नहीं कर सकता है वैसे ही परमपुरुष की आराधना के बिना किसी भी पुरुष मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकेगा।

शंकरः-

कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते।

प्रायश्चित्तं तु तस्योक्तं हरिसंस्मरणं परम्॥ ३५॥

पुंसः= मनुष्य को कृते पापे= पाप करने पर वै=निश्चितरूप से अनुतापः= पश्चात्ताप प्रजायते= होता है तो तस्य= उस पाप के लिये परं हरिसंस्मरणम्= श्रेष्ठतर श्रीहरि का स्मरण ही प्रायश्चित्तम् उक्तम्= प्रायश्चित्त कहा गया है।

विशेष 35. इस लोक में रहनेवाले पुरुष कोई पाप किये बिना जीवन नहीं चला सकता है। परन्तु अनिवार्यरूप से किये जानेवाले इन सारे पापों के लिये

हरिस्मरण एकमात्र प्रायश्चित्त है। परन्तु किसी दुष्टोद्देश्य से किये गये पापों का यह प्रायश्चित्त नहीं है। यह शंकर भगवान् का वचन है।

न ह्यपुण्यवतां लोके मूढानां कुटिलात्मनाम्।

भक्तिर्भवति गोविन्दे स्मरणं कीर्तनं तथा॥36॥

लोके= इस भूमि में अपुण्यवतां= पुण्यरहित कुटिलात्मनाम्= वक्रबुद्धिवाले मूढानां= मूर्ख लोगों को गोविन्दे= वेदसंरक्षक श्रीकृष्ण में भक्तिः न भवति= भक्ति उत्पन्न नहीं होती है। इस कारण से उन दुष्ट लोगों कि लिये स्मरणं कीर्तनं= भगवान् का स्मरण तथा कीर्तन तथा= प्रायश्चित न भवति= नहीं होता है।

तदैव पुरुषो मुक्तो जन्ममृत्युजरादिभिः।

जितेन्द्रियो विशुद्धात्मा यदैव स्मरते हरिम्॥37॥

जितेन्द्रियः= इन्द्रियों को अपने वश में रखनेवाला विशुद्धात्मा= पूर्व पुण्य के कारण विशुद्धान्तःकरण होकर पुरुषः= मनुष्य यदैव= जिस समय पर हरिं स्मरते= हरि का स्मरण करता है तदैव= उसी समय वह पुरुष जन्ममृत्यु-जरादिभिः जन्म मृत्यु वार्धक्य इत्यादिरोगों से मुक्तः=मुक्त हो जाता है।

प्राप्ते कलियुगे घोरे धर्मज्ञानविवर्जिते।

न कश्चित्स्मरते देवं कृष्णं कलिमलापहम्।। 38।।

घोरे=अत्यन्त कठोर धर्मज्ञानविवर्जिते= धर्मकार्य तथा ज्ञान के लिये अवकाश नहीं देनेवाला कलियुगे= कलियुग प्राप्ते= प्राप्त होने पर कलि-मलापहम्= कलियुग के दोष को नष्ट करनेवाले कृष्णं देवं= भगवान् श्रीकृष्ण को कश्चित्= कोई भी पुरुष न स्मरते= स्मरण नहीं करता है।

न कलौ देवदेवस्य जन्मदुःखापहारिणः।

करोति मर्त्यो मूढात्मा स्मरणं कीर्तनं हरेः।। 39।।

कलौ=कलियुग में मूढात्मा मर्त्यः= मूर्ख मनुष्य जन्मदुखापहारिणः= इस संसार का दुःख को परिहार करनेवाले देवदेवस्य= देवताओं की देव हरेः = श्रीहरि के स्मरणं कीर्तनं= स्मरण तथा कीर्तन न करोति = नहीं करता है।

विशेष- 36-39. शंकर जी बोल रहे हैं कि जो पुरुष अपने इन्द्रियों को वश में रखकर विशुद्ध मन से हरि का स्मरण करता है वह मनुष्य उसी समय तुरन्त संसार के सकल कष्टों से दूर हो जाता है। उस भक्त पुरुष का पाप हरिस्मरण से नष्ट हो जाते हैं। परन्तु यह कलियुग अत्यन्त घोर है, धर्मकार्य का आस्पद नहीं देता है, ज्ञान प्राप्त नहीं होना देता है। अतः मूर्खलोग इसी कलियुग में नानाविध विषयवस्तुओं में मग्न होकर परस्पर द्वेष असूया काम इत्यादि से अत्यन्त दुःख भोगते भोगते एकक्षण भी भगवान् का स्मरण नहीं करते हैं। कभी भी इन लोगों को भगवान् में भक्ति उत्पन्न नहीं होती है। हरिस्मरण के बिना अन्य कोई प्रायश्चित्त संसार में नहीं है। अतः ये मूर्ख लोग सर्वदा नरक में दुःख का अनुभव करते करते अन्त तक कभी भी भगवान् को प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

ये स्मरन्ति सदा विष्णुं विशुद्धेनान्तरात्मना।

ते प्रयान्ति भयं त्यक्त्वा विष्णुलोकमनामयम्॥ 40॥

ये =जो लोग विशुद्धेन अन्तरात्मना = विशुद्ध मन से सदा= सर्वदा विष्णुं= श्रीहरि को स्मरन्ति= स्मरण करते हैं ते= वे लोग भयं त्यक्त्वा= संसार के जन्म मृत्यु इत्यादि भय को छोडकर अनामयं= सकल दोषों से रहित विष्णुलोकं = भगवान् के वैकुण्ठलोक को प्रयान्ति= प्राप्त करते हैं।

गर्भजन्मजरारोगदुःखसंसारबन्धनैः।

न बाध्यते नरो नित्यं वासुदेवमनुस्मरन्॥41॥

वासुदेवं= वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण को नित्यं= प्रतिदिन अनुस्मरन्= स्मरण करनेवाला नरः= मनुष्य गर्भजन्मजरारोगदुःखसंसारबन्धनैः= गर्भवास-जन्म-वार्धक्य-रोग-दुःख इत्यादिरूप संसार के अनेक बन्धनों से न बाध्यते= बाधित नहीं होता है।

यममार्गं महाघोरं नरकाणि यमं तथा।

स्वप्नेऽपि नैव पश्येत यः स्मरेद्गरुडध्वजम्॥42॥

यः = जो पुरुष गरुडध्वजं= गरुडवाहन श्रीकृष्ण को स्मरेत्= स्मरण करता है वह पुरुष स्वप्नेपि= सपनों में भी महाघोरं यममार्गं= अत्यन्त भयंकर यमलोक के रास्ते को नरकाणि= नरकों को तथा= उसी प्रकार यमं= यमजी को भी नैव पश्येत्= नहीं देखता है।

विशेष- 40-42. शंकर जी फिर बोल रहे है कि जो लोग शुद्धमन से परिशुद्ध भक्ति से सर्वदा श्रीहरि का स्मरण करते हैं वे लोग संसार के सारे भय से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करेंगे। श्रीहरि को प्रति दिन स्मरण करनेवाला पुरुष को इस संसार का भय कुछ भी नहीं होता है। वह पुरुष गर्भवास-जन्म-बूढापन (वार्धक्य) रोग इत्यादि से उत्पन्न होनेवाले दुःखों से तथा अनेक प्रकार के सांसारिक बन्धनों से बाधित नहीं होता है। श्रीहरि के वाहन गरुडजी हैं। गरुडजी को हरिका ध्वज भी कहा गया है। उस गरुडध्वज वासुदेव का स्मरण करने पर उस पुरुष के सपनों में भी यमधर्मराज दिखाई नहीं देंगे। वह पुरुष नरक को छोडिये, नरक के रास्तों को भी कभी अपने स्वप्नों में नहीं देखेगा।

वह पुरुष अच्छे स्वप्नों को ही देखेगा। उस मनुष्य को कभी भी यम का भय नहीं होगा।

हृदि रूपं मुखे नाम नैवेद्यमुदरे हरेः।

पादोदकं च निर्माल्यं मस्तके यस्य सोऽच्युतः॥43॥

यस्य= जिस पुरुष के हृदि= हृदय में हरेः रूपं= परमात्मा का रूप होगा मुखे= मुख में हरेः नाम= हरि का नाम होगा, उदरे= पेट में हरेः नैवेद्यं= हरि का नैवेद्य होगा, तथा मस्तके= सिर पर हरेः पादोदकं= हरि का चरणामृत और निर्माल्य होगा सः= वह पुरुष अच्युतः= मुक्त होगा।

गोविन्दस्मरणं पुंसां पापराशिमहाचलम्।

असंशयं दहत्याशु तूलराशिमिवानलः॥44॥

अनलः= आग तूलराशिम् इव= रूई की राशि को जैसे दहति= भस्म करती है, उसी प्रकार गोविन्दस्मरणं= श्रीहरि का स्मरण पुंसां= मनुष्यों की पापराशिं= पापराशि को असंशयं= निस्संशय रूप से आशु= अत्यन्त शीघ्र दहति=भस्म करता है।

विशेष- 43-44. शंकरजी फिर बोल रहे हैं कि जैसे बहुत बडी रूई राशि को आग क्षणमात्र में जला कर भस्म करती है। उसी प्रकार मनुष्य अनन्त जन्मों में भले ही जितने भी पाप किये हो, परन्तु श्रीहरि का स्मरण करने पर क्षणमात्र में सारे पाप भस्म हो जाते हैं, मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। अतः जीवन के प्रतिक्षण हरि का स्मरण करते रहना चाहिये।

उसी प्रकार शुद्धहृदय से हरि का स्मरण, सर्वदा मुख से हरि नाम संकीर्तन, उदर में हरि को समर्पित भोग, सिर में हरि का पादोदक तथा हरि को समर्पित तुलसी पुष्प इत्यादिनिर्माल्य, इन पांच वस्तुओं का धारण जो

पुरुष करता है वह पुरुष निश्चित रूप से मुक्त हो जाता है। भागवत में भी 'उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि' (हे हरे ! तुम को समर्पित भोग का अवशिष्ट भाग को भोजन कर हम लोग तुम्हारी माया को पराजित कर लेंगे) ऐसा कहा गया।

कौशिकः-

अनाराधितगोविन्दा ये नरा दुःखभागिनः।

आराध्य वासुदेवं स्युर्नित्यानन्दैकभागिनः ॥45॥

अनाराधितगोविन्दाः= गुरूपदेश न होने के कारण गोविन्द जी की आराधना न किये हुए ये नराः= जो लोग दुःखभागिनः=दुःख का अनुभव कर रहे हैं वही लोग वासुदेवं= वासुदेवपुत्र श्रीकृष्ण जी की आराध्य= आराधना कर नित्यानन्दैकभागिनः स्युः= वैकुण्ठलोक में नित्य आनन्द का अनुभव करेंगे। विशेष- कौशिकऋषि कह रहे हैं कि कभी कभी योग्य सज्जन लोग भी सही मार्गनिर्देशन-गुरूपदेश के बिना भक्तिमार्ग से च्युत होते हैं। परन्तु सुयोग्य भगवन्मार्गोपदेशक गुरु मिलने से वही लोग भक्तिमार्ग में प्रवृत्त होकर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

अगस्त्यः-

स्मरणादेव कृष्णस्य पापसंघातपञ्जरः।

शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा।। 46।।

यथा= जिस प्रकार वज्रहतः= इन्द्र के वज्रायुध से आहत गिरिः= पर्वत गिर जाता है उसी प्रकार कृष्णस्य= भगवान् श्रीकृष्ण के स्मरणादेव= स्मरणमात्र

से पापसंघातपञ्जरः= हमारे द्वारा किये गये पापों के समूहरूपी पिञ्जरा शतधा= सैकडों टुकडों में भेदम् आयाति= टूट जाती है।

विशेष - अगस्त्य ऋषि कह रहे हैं कि कृष्ण का नामस्मरण इन्द्र के वज्रायुध जैसे अत्यन्त प्रभावशाली है। केवल एक बार कृष्ण के स्मरण करने से ही हमारे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। इन्द्र के वज्रायुध से मारने पर जैसे पर्वत टुकडे टुकडे हो जाते हैं उसी प्रकार हमारे पाप हरिनामस्मरण से ध्वस्त हो जाते हैं।

कृष्णे रताः कृष्णमनुस्मरन्तः

तद्भावितास्तद्गतमानसाश्च।

भिन्नेपि देहे प्रविशन्ति कृष्णं

हविर्यथा मन्त्रहुतं हुताशे।। 47।।

यथा=जिस प्रकार मन्त्रपूर्वक आहुति दिया गया पुरोडाश इत्यादि हुताशे= आहवनीयादि अग्नि में प्रविष्ट होता है, उसी प्रकार कृष्णे रताः= भगवान् श्रीकृष्ण में भक्तियुक्त कृष्णम् अनुस्मरन्तः= सर्वदा श्रीकृष्ण का स्मरण करनेवाले तद्भाविताः= श्रीकृष्ण के द्वारा स्वकीयत्वेन अनुगृहीत तद्गतमानसाश्च= उस श्रीकृष्ण में एकाग्रचित्त होकर लोग देहे भिन्ने अपि= लिङ्गदेहभङ्ग के बाद कृष्णं= भगवान् में प्रविशन्ति= प्रविष्ट होते हैं।

सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा चान्धजडमूकता।

यन्मुहूर्तं क्षणं वाऽपि वासुदेवो न चिन्त्यते॥48॥

मुहूर्तं= एक मुहूर्त काल तक क्षणं वा अपि= एक क्षणकाल तक भी वासुदेवः न चिन्त्यते= वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण का स्मरण नहीं किया जाता है यत्= यह

जो है सा हानिः= वह हानिप्रद है। तत् महच्छिद्रं= वह महापाप है। सा अन्धजडमूकता च= वह अन्धता जडता और मूकता है।

विशेष 47-48. सर्वदा कृष्ण जी में अनुरक्त होकर सर्वदा भगवान् के द्वारा स्वकीयभक्त के रूप में स्वीकृत होकर जो लोग एकाग्रमन से हरिनामस्मरण करते हैं वे लोग लिङ्गदेह नष्ट होने के बाद कृष्णलोक में प्रविष्ट होंगे। हमारे शरीर चार प्रकार के होते हैं। बाहर दिखाई देनेवाला चर्म मांस मज्जादिरूप बाह्यशरीर पहलेवाला है। उसके अन्दर सृष्टिकाल में भगवान् के द्वारा दिया गया अनिरुद्धशरीर है। उसके अन्दर लिङ्गदेह होता है। जैसे यव इत्यादि धान्य के बाहर शूक (छिलका) होता है उसी प्रकार जीवस्वरूप के आवरण के रूप में लिङ्गदेह होता है। उस के अन्दर स्वरूपदेह होता है। भगवान् के बारे में सुनना (श्रवण), तन्मय होकर उसी का चिन्तन करना (मनन), अन्त में समाधिमग्न होकर ध्यान करना (निदिध्यासन), इस प्रकार की साधना से भगवान् का दर्शन प्राप्त हो जाता है। भगवान् को साक्षात् देखने के बाद उस शरीर में तथा अगले जन्मों में कर्मशेष का भोग करने के बाद कल्पान्त में जीव अर्चिरदिमार्ग से चल कर विरजा नदी में स्नान करता है। उस समय लिङ्गदेह उस विरजा नदी में ही प्रवहित हो जाता है। इस प्रकार लिङ्गदेह को छोडने के बाद जीव भगवान् के लोक में प्रवेश करता है। कुछ देवताओं का तो भगवान् के शरीर में ही प्रवेश होता है। इस प्रक्रिया को ध्यान में रखकर कहा गया है कि लिङ्गदेह भङ्ग होने के बाद जीव वैकुण्ठ में प्रवेश करता है।

अतः आयुष्य के प्रत्येक क्षण में भगवान् का चिन्तन करना चाहिये। एक भी क्षण भगवान् का स्मरण छोड दिया तो वही महाहानिप्रद होता है, बहुत बडा दोष बन जाता है। एक क्षण, एक मुहूर्त तक भी भगवत्स्मरण छोडने पर वह

अन्धा के समान है, पुरुष को पत्थर जैसा जड समझना चाहिये। भगवन्नामकीर्तन न करने पर उस को मूक समझना चाहिये। अतः इन सारे दोषों के निवारण हेतु सर्वदा हरिनामस्मरण तथा कीर्तन करते रहना चाहिये।

नारायणो नाम नरो नराणां

प्रसह्य चोरः कथितः पृथिव्याम्।

अनेकजन्मार्जितपापसंचयं

हरत्यशेषं स्मृतमात्र एव॥49॥

पृथिव्यां= इस भूमि पर नारायणः नाम= नारायण इस नाम का नरः= परमपुरुष को प्रसिद्धचोरः कथितः=अत्यन्त प्रसिद्ध चोर कहा गया है। क्यूं कि स्मृतमात्र एव=केवल उस के स्मरण करने से ही अनेकजन्मार्जितपाप-संचयं= अनेक जन्मों से संपादित पापराशि को हरति= चुरा लेता है।

यस्य संस्मरणादेव वासुदेवस्य चक्रिणः।

कोटिजन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥50॥

चक्रिणः =चक्रधारी यस्य वासुदेवस्य= वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण के संस्मरणादेव= केवल स्मरणमात्र से कोटिजन्मार्जितं= अनेक करोडों जन्मों में किया गया पापं= पापराशि तत्क्षणात् एव= उसी क्षण में ही नश्यति= नष्ट हो जाता है (ऐसे श्रीकृष्ण भगवान् की उपासना सर्वदा करना चाहिये।)

विशेष-49-50. श्लोक 47 में कहा गया है कि भगवान् के स्मरण से अनेक जन्मों में किया गया पाप नष्ट हो जाते हैं। उसी विषय को यहां भी प्रतिपादन किया जा रहा है। 'किम् अलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने' (भगवान् प्रसन्न होने पर इस जगत् में सारें पदार्थ सुलभ होंगे) इस उक्ति के अनुसार भगवान्

अमितशक्तिसंपन्न होने के कारण भक्तों के ऊपर अनुग्रह कर उन के सारे पापों को भस्मसात् करते है। जैसे नन्हें बच्चों के ऊपर प्रसन्न होकर माता उन बच्चों को प्यार से अपनाती है, उसी प्रकार भक्तलोगों के द्वारा भक्तिपूर्वक पुकारे गये भगवान् भक्तों की सारी मनोकामनाएं पूर्ण करते हैं। उन के पाप राशि का नाश करते हैं। अतः उन को प्रसिद्ध चोर कहा गया है, जो सारे पापों को चुरा कर भक्तों के ऊपर अनुग्रह करते हैं। बाकी चोर छोटे मोटे वस्तुओं की चोरी करते हैं, परन्तु भगवान् इतनी बडी पापराशि को चुरा लेते हैं।

किं तस्य बहुभिस्तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः।

यो नित्यं ध्यायते देवं नारायणमनन्यधीः।। 51।।

यः=जो पुरुष अनन्यधीः= एकाग्रचित्त होकर नित्यं= प्रतिदिन नारायणं देवं= भगवान् नारायण को ध्यायते= ध्यान करता है तस्य= उस पुरुष को बहुभिः तीर्थैः= गङ्गा यमुना इत्यादि अनेक तीर्थों से क्या प्रयोजन है ? तपोभिः= कृछ्र-चान्द्रायण व्रत इत्यादि तपस्याओं से किं= क्या प्रयोजन है ? अध्वरैः= सोमयाग इत्यादि बडे बडे यज्ञों से किं= क्या प्रयोजन है ?

ये मानवा विगतरागपरावरज्ञा

नारायणं सुरगुरुं सततं स्मरन्ति।

ध्यानेन तेन हतकिल्बिषचेतनास्ते

मातुः पयोधररसं न पुनः पिबन्ति।। 52।।

विगतरागपरावरज्ञाः= वैराग्य प्राप्त कर तथा सभी पदार्थों के तारतम्य जानकर ये मानवाः= जो लोग सुरगुरुं= देवताओं के गुरु नारायणं= नारायण को सततं= सर्वदा नमन्ति= नमस्कार करते हैं ते= वे लोग तेन

ध्यानेन= सतत नामस्मरणरूप ध्यान से हतकिल्बिषचेतनाः= दुर्बुद्धि रहित होकर मातुः पयोधररसं= माता के स्तन्य को पुनः=फिर न पिबन्ति= नहीं पीते हैं।

विशेष 51-52. जो पुरुष सर्वदा एकाग्रचित्त होकर भगवान् का स्मरण करता है वह पुरुष भगवत्स्मरण से ही सारे तीर्थक्षेत्रों की यात्रा का फल प्राप्त करता है। अतः उस पुरुष को तीर्थयात्रा से कुछ भी प्रयोजन नहीं है, न वा कृच्छ्र-चान्द्रायण इत्यादि कठिन तपस्याओं से, नापि यज्ञ-यागों से। कलियुग में कठिन तपस्या का अनुष्ठान यज्ञ-यागादि अनुष्ठान करना भी दुष्कर है। अतः केवल हरिनामस्मरण ही कलियुग में अत्यन्त श्रेष्ठ मोक्षसाधन है। इस प्रकार सतत हरिनामस्मरण करनेवाले लोग पुनः इस संसार में नहीं आयेंगे। 'परावरज्ञाः' शब्द से पदार्थों का विवेकपूर्ण तारतम्य ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक बताया गया है। कौन सा पदार्थ नित्य है ? कौन सा अनित्य है ? यह जानना आवश्यक है। उसी प्रकार देवताओं मे भी क्रमशः कौन सी देवता से कौन सी देवता उत्कृष्ट है। इन्द्र-रुद्र-प्राण-चतुर्मुख ब्रह्मा-लक्ष्मी-विष्णु इस क्रम से देवताओं में तारतम्य ज्ञान प्राप्त कर सभी देवताओं से विष्णु को ही उत्तम समझ कर हरिस्मरण करना चाहिये।

हे चित्त चिन्तयस्वेह वासुदेवमहर्निशम्।

नूनं यश्चिन्तितः पुंसां हन्ति संसारबन्धनम्॥53॥

हे चित्त= हे मनोऽभिमानिदेवता शंकर जी ! चिन्तितः= चिन्तन मनन करने पर यः=जो वासुदेव कृष्ण पुंसां= मनुष्यों के संसारबन्धनं= संसार बन्धन को नूनं= निश्चितरूप से हन्ति=नष्ट कर देते हैं उस वासुदेवं=

श्रीकृष्ण का इह= अभी अहर्निशम्= दिन रात निरन्तर चिन्तयस्व= मेरे द्वारा भगवान् का चिन्तन कराइए।

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।

इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥54॥

सर्वशास्त्राणि= सारे शास्त्रों को आलोड्य= पुनः पुनः परामर्श कर पुनः पुनः = बार बार विचार्य च= विचार करने पर इदम् एकं= यही एक विषय सुनिष्पन्नं= सिद्ध होता है कि 'नारायणः=भगवान्नारायण को सदा=सर्वदा ध्येयः= ध्यान करना चाहिये'।

विशेष- भगवान् वेदव्यास जी अनेक बार यह बात लिख चुके हैं। इस संसार में मुख्य कर्तव्य क्या है ? इस विषय में विचार करने हेतु सारे सास्त्रों को बार बार मथन कर बार बार विचार कर ने पर सर्वशास्त्रों का निर्णय यह निकला है कि " सर्वदा नारायण विष्णु का स्मरण करना चाहिये"। वेद-पुराण-महाभारत-रामायण- धर्मशास्त्र इत्यादि सभी धर्मग्रन्थों का निर्णय एक ही है। इस में अणुमात्र भी मतभेद नहीं है। अतः वर्ण-जाति भेद के बिना सब सभी मार्गावलम्बी मनुष्यों को हरिस्मरण करना चाहिये।

हमारे मन सर्वदा भगवान् में एकाग्र होने हेतु मनस् तत्त्व के अभिमानी देवता शंकर जी से प्रार्थना करना चाहिये कि हे भगवान् शंकर जी! आप मेरे मन में रहकर मन को सदा भगवच्चिन्तनपर बनाइए। इस प्रार्थना से संतुष्ट शंकर जी हमारे मन को भगवच्चिन्तन के अनुकूल बनायेंगे।

स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते।

पुरुषस्तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्॥55॥

यत्र स्मृते= जिस श्रीकृष्ण के स्मरण करने पर पुरुषः= स्मरण करनेवाल मनुष्य सकलकल्याणभाजनं= सब प्रकार के मङ्गलों का पात्र जायते=ब जाता है नित्यं= प्रतिदिन तम् =उस अजं= जन्मरहित हरिं= श्रीहरि वे शरणं वज्रामि= शरण मे जाता हूं।

वेदेषु यज्ञेषु तपस्सु चैव दानेषु तीर्थेषु व्रतेषु यच्च।

इष्टेषु पूर्तेषु च यत्प्रदिष्टं पुण्यं स्मृते तत्खलु वासुदेवे।। 56।।

वेदेषु= वेदाध्ययन से, यज्ञेषु= यज्ञानुष्ठान से, तपस्सु च एव= उपवार इत्यादि तपस्याओं से भी, दानेषु= दान देने से, तीर्थेषु=तीर्थयात्राओं से व्रतेषु च = चान्द्रायणादि व्रतों से भी यत् = जो पुण्य बताया गया है, तथ इष्टेषु= वैश्वदेव इत्यादियागों से पूर्तेषु च= अन्नदान वापी कूप तटाक इत्या के निर्माण से यत् पुण्यं प्रदिष्टं= जो भी पुण्य बताया गया हैं तत्= वह सार पुण्य वासुदेवे स्मृते खलु= श्रीकृष्ण का स्मरण करने पर ही होता है (अन्यथ नहीं)

आराध्यैव नरो विष्णुं मनसा यद्यदिच्छति।

फलं प्राप्नोति विपुलं भूरि स्वल्पमथापि वा॥57॥

नरः=मनुष्य मनसा= मन से भूरि= बहुत बडा अथवा=अथवा स्वल अपि= छोटा भी यत् यत्= जो कुछ भी फलं= फल को इच्छति= प्राप्त कर की इच्छा करता है विष्णुं= विष्णु की आराध्य एव= आराधना करने से ह विपुलं= अधिक मात्रा में फलं=उस फल को प्राप्नोति= प्राप्त करता है।

विशेष- 55-57. शास्त्रों में पुण्यसंपादन हेतु अनेक प्रकार का साधन बताय गया है। वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, उपवासादि तपस्या, दान, तीर्थयात्रा चान्द्रायणादि व्रत, प्रतिदिन विहित वैश्वदेव सन्ध्यावन्दनादि, परोपकार

किये जानेवाला अन्नदान, जलदान, पान्थगृहनिर्माण, कूपतटाकादिनिर्माण इन सारे सत्कर्मों को हरिस्मरणपूर्वक करने पर ही उस से पुण्यप्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं। अतः सर्वदा हरिस्मरण अत्यन्त आवश्यक है। उस हरि के स्मरण करने पर उस पुरुष के गृह में मङ्गल होता है। पुत्रपौत्रादिसन्तान, ज्ञान, पशु, वाहन, गृह इत्यादिरूप सकल अभीष्टवस्तु प्राप्त करता है।

इस प्रकार सतत हरिस्मरण करने से उस पुरुष का मन में कोई भी छोटी बडी वस्तुओं के प्रति कामना करता है तो उस वस्तु को प्राप्त कर लेता है।

अब तक ध्यान के बारे में कहा गया है। अगले श्लोकों मे भगवन्नामकीर्तन का फल का प्रतिपादन कर रहे हैं।

यन्नामकीर्तनं भक्त्या विलापनमनुत्तमम्।

मैत्रेयाशेषपापानां धातूनामिव पावकः ॥58॥

मैत्रेय= हे मैत्रेय ऋषि ! धातूनां= सोना इत्यादि धातुओं के लिये पावकः इव= अग्नि जैसे शुद्धिकारक होता है उसी प्रकार अशेषपापानां= हमारे द्वारा किये गये पापों के लिये भक्त्या यन्नामकीर्तनं= भक्तिपूर्वक भगवन्नामकीर्तन अनुत्तमं= अत्यन्त श्रेष्ठ विलापनं= नाशक है।

कलिकल्मषमत्युग्रं नरकार्तिप्रदं नृणाम्।

प्रयाति विलयं सद्यः सकृत्संकीर्तितेच्युते।। 59।।

नृणाम्= मनुष्यों को नरकार्तिप्रदम्= नरकदुःख देनेवाला अत्युग्रं= अत्यन्त भयंकर कलिकल्मषं= कलियुग के काम क्रोध इत्यादि रूप दोष सकृत्= एक बार अच्युते संकीर्तिते= भगवान् का नाम संकीर्तन करने पर सद्यः=तुरन्त विलयं प्रयाति= विनष्ट हो जाता है।

विशेष 58-59. सोना इत्यादि धातुओं को आग में डालकर उन की अशुद्धि निकालते हैं। उसी प्रकार भगवन्नामकीर्तन एक अग्नि है। उस अग्नि का संपर्क होने पर हम लोगों के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। तथा हम लोग शुद्ध हो जाते हैं। अतः सर्वदा भगवन्नामकीर्तन करना चाहिये। कलियुग के अत्यन्त भयंकर दोष है काम क्रोध लोभ । यह तीनों नरक के मार्ग है। इन तीनों दोषों को विनष्ट करने का एकमात्र उपाय है भगवन्नामकीर्तन। एक बार भी संकीर्तन करने पर कलियुग का यह दोष नष्ट हो जाता है।

अनायासेन चायान्ति मुक्तिं केशवसंश्रिताः।

तद्विघाताय जायन्ते शक्राद्याः परिपन्थिनः।। 60।।

केशवसंश्रिताः= भगवान् श्रीकृष्ण के आश्रित लोग अनायासेन= परिश्रम के बिना मुक्तिं च आयान्ति= मुक्ति को भी प्राप्त करते है। परन्तु शक्राद्याः= इन्द्र इत्यादिदेवताएं तद्विघाताय= मोक्ष में विघ्न उत्पन्न करने हेतु परिपन्थिनः जायन्ते= विरोधि बन जाते है।

चतुःसागरमासाद्य जम्बूद्वीपोत्तमे क्वचित्।

न पुमान्केशवादन्यः सर्वपापचिकित्सकः ॥61॥

जम्बूद्वीपोत्तमे= अत्युत्तम जम्बूद्वीप में चतुस्सागरम् आसाद्य=चारों समुद्रों के मध्य में रहनेवाला मनुष्य के सर्वपापविचित्सकः= सब पापों का नाश करनेवाले पुमान्= पुरुष केशवात् अन्यः= श्रीकृष्ण के अलावा दूसरा कोई न= नहीं है।

विशेष- 60-61. जो लोग भगवन्नाम संकीर्तन से मोक्ष प्राप्त करना चाहते है वह लोग कीर्तन से अवश्य अनायास मोक्ष प्राप्त करते हैं। परन्तु श्रीहरि की परिवार देवताओं को भी अवश्य प्रसन्न करना चाहिये। अन्यथा इन्द्रादि

देवताएं मोक्षमार्ग में विघ्न पैदा करते हैं। अतः उन देवताओं को अवश्य ही प्रसन्न करना चाहिये। परन्तु यह विषय भूलना नहीं चाहिये कि इन देवताओं की शक्ति परिमित है। ये देवताएं मोक्ष दे नहीं सकती है। हमारे सब पाप नष्ट नहीं कर सकती हैं। अतः इन देवताओं को उन की योग्यता के अनुरूप ही पूजा करना चाहिये तथा सर्वोत्तम श्रीहरि का भजन कीर्तन सर्वदा करते रहना चाहिये। उस को कभी नहीं छोडना चाहिये।

यदभ्यर्च्य हरिं भक्त्या कृते वर्षशतैरपि।

फलमाप्नोति विपुलं कलौ संकीर्त्य केशवम्।। 62।।

कृते= कृतयुग में वर्णशतैः अपि= एक सौ सालों तक भक्त्या= भक्तिपूर्वक हरिं= श्रीहरि की अभ्यर्च्य=अर्चना कर यत्=जो विपुलं= बहुत फलं=फल को आप्नोति = प्राप्त करता है उस फल को कलौ= कलियुग में केशवं= श्रीकृष्ण का संकीर्त्य= कीर्तन करने से आप्नोति= प्राप्त करता है।

विशेष- एक बार वेदव्यास जी स्नान कर रहे थे। उसी समय अनेक ऋषि लोग उनके दर्शनार्थ वहां पधारे। वेदव्यासजी सरोवर में डुबकी लगा कर ऊपर उठते हुए कहे कि " कलियुग ही धन्य है"। सारे ऋषिजन विस्मित होकर पूछे कि "क्यूं कलियुग धन्य है ?" वेदव्यास जी ने कहा कृतयुग इत्यादि अन्य तीनों युगों में साधना बहुत कठिन होती है। हजारों सालों तक एक अंगूठे पर खडे होकर तपस्या करने पर भगवान् प्रसन्न होते थे। परन्तु कलियुग में केवल भगवन्नामकीर्तन से ही भगवान् प्रसन्न होते हैं। अतः कलियुग ही इतरयुगों से श्रेष्ठ है।

इसी प्रसङ्ग क स्मरण दिलाता है यह श्लोक। सत्ययुग में सौ साल तक भगवान् की अर्चना कर जिस फल प्राप्त करते हैं वह पुण्यफल कलियुग में

केवल भवन्नामकीर्तन से ही प्राप्त होता है। अतः इस सदवकाश का लाभ उठाते हुए हम लोग सर्वदा भगवान् को नाम से पुकारें। इस से भगवान् संतुष्ट हो जाते हैं।

क्षीयते तु यदा धर्मः प्राप्ते घोरे कलौ युगे।

तदा न कीर्तयेत्कश्चिन्मुक्तिदं देवमच्युतम्॥ 63॥

घोरे=अत्यन्त भयंकर कलौ युगे= कलियुग प्राप्ते= आने पर यदा= जब धर्मः= धर्ममार्ग क्षीयते= क्षीण हो जाता है तदा= उस समय कश्चित्= कोई भी पुरुष मुक्तिपदं= मुक्ति देनेवाले देवं=देवोत्तम अच्युतं= श्रीहरि का न कीर्तयेत्= कीर्तन नहीं करता है।

विशेष-हरिकीर्तन का फल इतना अपरिमेय होने पर भी इस अत्यन्त घनघोर कलियुग में श्रीहरि का नाम संकीर्तन कोई पुरुष नहीं करता है। अतः ऐसे संसारासक्त लोग सर्वदा संसारचक्र में पतित होकर कष्ट का अनुभव प्राप्त करते हैं।

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।

पुमान्विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव॥ 64॥

अरण्य के रास्ते में जानेवाला कोई पुरुष सिंहत्रस्तैः= सिंह से भयभीत दूसरे मृगैः इव= जानवरों से जिस प्रकार छोडा जाता है उसी प्रकार अवशेन अपि= स्वप्रयत्न के बिना यन्नाम्नि= श्रीहरिनाम का कीर्तिते= कीर्तन करने पर पुमान्= नामसंकीर्तन करनेवाला पुरुष सर्वपातकैः=सभी पापों से सद्यः= तुरन्त विमुच्यते= मुक्त हो जाता है।

ब्रह्मा-

नारायणेति मन्त्रोऽस्ति वागस्ति वशवर्तिनी।

तथाऽपि नरके घोरे पतन्तीत्येतदद्भुतम्॥ 65॥

नारायण इति मन्त्रः अस्ति= "नारायण" यह चार अक्षर का मन्त्र सब को विदित है। वशवर्तिनी= हमारी इच्छा से काम करनेवाली वाक् अस्ति= वागिन्द्रिय है। तथापि= यह दोनों होने पर भी लोग घोरे नरके= अत्यन्त भयंकर नरक में पतन्ति= गिर पडते हैं इति एतत्= यह विषय अद्भुतं= आश्चर्यजनक है।

विशेष 64- 65. कोई पुरुष अरण्य में जाते हुए भालू वाघ इत्यादि जानवरों के आक्रमण से त्रस्त होता है। परन्तु उसी समय वहां पर सिंह आने पर सिंह के डर से बाकी सब जानवर उस पुरुष को छोड कर भाग जाते हैं। उसी प्रकार हरिनामकीर्तन करने पर सारें पाप नष्ट हो जाते हैं।

ब्रह्माजी को बहुत आश्चर्य होता है। ब्रह्माजी पूछते हैं कि नरक में लोग क्यूं आ रहे हैं ? नरक से बचने के लिये इन लोगों के पास अत्यन्त सुलभ उपाय है। हमारी वाणी किसी भी शब्द का उच्चारण करने कि लिये सक्षम है। "नारायण" यह चार अक्षरवाला मन्त्र सब को विदित है। लोग नारायण मन्त्रोच्चारण क्यूं करते नहीं हैं ?

आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता

घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः।

संकीर्त्य नारायणशब्दमात्रं

विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवन्ति।। 66।।

आर्ताः= पीडित विषण्णाः= दुःखी शिथिलाः= शिथिल अवयव वाले भीताश्च= भयभीत लोग भी घोरेषु व्याधिषु= अत्यन्त घोर रोगों में वर्तमानाः च= पीडित लोग भी नारायणशब्दमात्रं= केवल नारायण शब्द का संकीर्त्य= संकीर्तन कर विमुक्तदुःखाः= दुःख से दूर होकर= सुखिन भवन्ति= सुखी होते हैं।

कौशिकः-

सकृदुच्चरितं यैस्तु कृष्णेति न विशन्ति ते।

गर्भागारगृहं मातुर्यमलोकं च दुःसहम्॥ 67॥

जिन लोगों ने सकृत्= एक बार भी कृष्ण इति= "कृष्ण" यह शब्द का उच्चरितं= उच्चारण किया है ते= वे लोग मातुः गर्भागारगृहं= माता का गर्भ रूपी बन्धनकक्ष में तथा दुःसहं= अत्यन्त कठिन यमलोकं च= यमलोक में न विशन्ति= प्रवेश नहीं करते है।

विशेष- 66-67. श्लोक 66 अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस संसार के नानाविधक्लेशों से पीडित दुःखी भयभीत अपङ्ग नानाविधरोगग्रस्त ये सारे तरह के लोग केवल नारायणशब्द का संकीर्तन से दुःखविमुक्त होकर वैकुण्ठलोक में नित्यसुख प्राप्त करेंगे। जो लोग "कृष्ण" इस दो अक्षर का मन्त्र को कभी उच्चारण करते हैं उन लोगों का फिर गर्भवास दुःख नहीं होगा। वह लोग कभी यमलोक को नहीं देखेंगे।

क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम्।

क्व जपो वासुदेवेति मुक्तिबीजमनुत्तमम्॥ 68॥

पुनरावृत्तिलक्षणं= संसार में पुनरावृत्तिदायक नाकपृष्ठगमनं= स्वर्गलोक प्राप्ति क= कहां ? अनुत्तमं मुक्तिबीजं= मुक्ति का मुख्य साधन वासुदेव इति जपः= "वासुदेव" इस चार अक्षर का मन्त्र जाप क= कहां ?

बुध्या बुद्धा वदस्वैनं हरिरित्यक्षरद्वयम्।

स्मरणात्कीर्तनाद्यस्य न पुनर्जायते क्वचित्॥ 69॥

यस्य= जिस श्रीहरि का स्मरणात्= स्मरण से तथा कीर्तनात्= नामकीर्तन से पुरुष क्वचित्= कहीं भी पुनः =फिर न जायते= उत्पन्न नहीं होता है एनं =श्रीहरि को बुद्ध्या= बुद्धि से बुद्ध्वा= अच्छे तरह से समझ कर हरिः इति अक्षरद्वयं="हरि" इस दो अक्षर के मन्त्र को वदस्व=उच्चारण करो।

विशेष- 68-69. भगवान् के नामस्मरण नामसंकीर्तन से निश्चितरूप से मुक्त हो जाता है। उस जीव का फिर जन्म नहीं होगा। अन्यदेवताओं की उपासना-अर्चना से वह पुरुष स्वर्ग सुख को प्राप्त कर सकता है। परन्तु स्वर्गसुख अनित्य है। जब तक पुण्य होता है तब तक स्वर्ग में आनन्द प्राप्त करता है। पुण्य समाप्त होने के बाद वह मनुष्य फिर इसी भूमि पर जन्म लेकर सब दुःखों का भागी होता है। अतः अन्यदेवताओं की उपासना से शाश्वत सुख नहीं मिलेगा। केवल विष्णु हरि वासुदेव इत्यादि भगवन्नामकीर्तन से ही भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना से ही वह पुरुष वैकुण्ठ में नित्य सुख प्राप्त कर सकता है। अतः कहा गया है कि स्वर्गसुख कहां ? मुक्तिसाधन वासुदेवमन्त्र कहां ? दोनों में तुलना नहीं हो सकती है।

हे जिह्वे मम निस्नेहे हरिं किं नानुभाषसे।

हरिं वदस्व कल्याणि संसारोदधिनौर्हरिः॥ 70॥

निःस्नेहे= प्रेमरहित हे मम जिह्वे= हे मेरी जीभ किम् = क्यूं हरिं न अनु-भाषसे= हरिकीर्तन कर नहीं रही हो ? हरिः= श्रीहरि संसारोदधि-नौः=संसारसागर के लिये नौका जैसा हैं। कल्याणी= मङ्गलरूपवालि हरिं वदस्व= हरिनाम कीर्तन करो।

असारे खलु संसारे सारात्सारतरो हरिः।

पुण्यहीना न विन्दन्ति सारङ्गाश्च यथा जलम्॥ 71 ॥

असारे= सारविहीन संसारे= इस संसार में हरिः=केवल श्रीहरि सारात् सारतरः खलुः= श्रेष्ठब्रह्मादि देवताओं से भी श्रेष्ठ हैं। सारङ्गाः=चातकपक्षी जलं= पानी को यथा न विन्दन्ति= जिस प्रकार प्राप्त नहीं करते हैं उसी प्रकार पुण्यहीनाः= पापी लोग न विन्दन्ति= परमात्मा को प्राप्त नहीं करेंगे।

कुरुक्षेत्रेण किं तस्य किं काश्या पुष्करेण किम्।

जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्॥ 72 ॥

यस्य= जिस पुरुष का जिह्वाग्रे= जीभ के अग्र में हरिः इति अक्षरद्वयं= "हरि" इस प्रकार के दो अक्षर विराजमान हैं तस्य= उस पुरुष को कुरुक्षेत्रेण किम् = कुरुक्षेत्र से क्या प्रयोजन है ? काश्या किं= काशी क्षेत्र से क्य प्रयोजन है? पुष्करेण किं= पुष्करक्षेत्र से क्या प्रयोजन है ?

विशेष- 70-72. जो पुरुष सर्वदा हरि हरि इस प्रकार से हरिनामकीर्त करता रहता है उस पुरुष को सारे तीर्थक्षेत्रों से कोई प्रयोजन नहीं है। कुरुक्षे काशी पुष्कर इत्यादि क्षेत्रों से भी उत्तम हरिनाम उस पुरुष को सकल पुरुषा देता है। परन्तु कलियुग अत्यन्त घोर होने के कारण कलियुग में लो श्रीहरिनाम के महत्त्व को समझ नहीं पाते हैं। इस संसार में श्रीहरि के बिन कोई सारभूत पदार्थ नहीं है। अतः ऋषि जी अपनी जीभ को संबोधित व

पूछ रहे हैं कि हे जीभ ! तुम हरिनामस्मरण नहीं कर रही हो। तुम भक्तिरहित हो। संसारसागर को पार करने हेतु आयी हुई नौका स्वयं श्रीहरि हैं। अतः श्रीहरि नाम स्मरण कर तुम भी मङ्गलमयी बनो।

ब्रह्मा-

असारे खलु संसारे सारमेकं निरूपितम्।

समस्तलोकनाथस्य सारमाराधनं हरेः॥73॥

असारे= सुखरहित संसारे= इस संसार में एकं खलु= एक ही सारं= सारतत्त्व निरूपित हुआ है। समस्तलोकनाथस्य= सकल लोकों के संरक्षक हरेः=श्रीहरि का आराधनं= उपासना एक ही सारं= सारतत्त्व है।

सा जिह्वा या हरिं स्तौति तच्चित्तं यत्तदर्पणम्।

तावेव केवलौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ॥74॥

या=जो जीभ हरिं= श्रीहरि की स्तौति= स्तुति करती है सा जिह्वा= वही असली जीभ है। यत्= जो मन तदर्पणम्= श्रीहरि को अर्पित है तत् चित्तम्= वही असली मन है। तत्पूजाकरौ= श्रीहरि की पूजा करनेवाले यौ= जो करौ= हाथ है कैवलौ तौ एव श्लाध्यौ= केवल वही हाथ सराहनीय हैं।

यस्तु विष्णुपरो नित्यं दृढभक्तिर्जितेन्द्रियः।

स्वगृहेऽपि वसन् याति तद्विष्णोः परमं पदम्॥75॥

यः तु= जो पुरुष नित्यं= प्रतिदिन दृढभक्तिः =अत्यन्त अचल भक्तिसंपन्न हो कर जितेन्द्रियः= इन्द्रियों को अपने वश में रखता है तथा विष्णुपरः= अपने को विष्णु का दास मानता है वह पुरुष स्वगृहे= अपने गृह में वसन्=

वास करने पर भी (किसी तीर्थ क्षेत्र यात्रा न करने पर भी) विष्णोः= श्रीह
का तत् परमं पदं= वह प्रसिद्ध धाम (वैकुण्ठ) को याति= प्राप्त करता है।
विशेष 73-75. पूर्व में नामसंकीर्तन की महत्ता को प्रतिपादित किया गया
अगले श्लोकों में श्रीहरि की आराधना के बारें में विस्तृत रूप से वर्णन कि
गया है। इस संसार के सारे पदार्थ व्यर्थ ही हैं। सब दुःखमय हैं, सब क्षणि
हैं, सब अशाश्वत हैं। अतः लोक में सारे वस्तुओं से श्रेष्ठ श्रीहरि की से
एकमात्र सारतत्त्व है। श्रीहरि की आराधना करने पर ही मनुष्य असली कर्त
को निभाता है। जिह्वा का मुख्य कर्तव्य है श्रीहरि के स्तोत्र करना है। श्रीह
ध्यान करना ही मन का असली कर्तव्य है। श्रीहरिपूजा करना ही दोनों हा
का मुख्य कर्तव्य है। जो मन-जिह्वा-हाथ यह काम नहीं करता है वे स
इन्द्रिय व्यर्थ हैं। अतः सर्वदा अपने सारे इन्द्रियों से भगवान् की आराध
करना चाहिये। ऐसे नित्य आराधना करने पर उस मनुष्य को कही तीर्थ क्षे
की यात्रा करने की आवश्यकता नहीं होगी।

शंकरः-

साधु साधु महाभाग साधु दानवनाशन।

यन्मां पृच्छसि धर्मज्ञ केशवाराधनं प्रति॥76॥

धर्मज्ञ= धर्म के ज्ञानी दानवनाशन= दानवों का विनाशक महाभाग=
भाग्यवान् स्कन्द ! मां प्रति= मेरे से केशवाराधनं= श्रीहरि की आराधना
बारे में पृच्छसि =पूछ रहे हो। साधु साधु= तुमने बहुत अच्छा विषय
लिया है।

निमिषं निमिषार्धं वा मुहूर्तमपि भार्गव।

नादग्धाशेषपापानां भक्तिर्भवति केशवे॥ 77॥

भार्गव= हे भार्गव ! अदग्धाशेषपापानां= अर्चना पूजा से सारे पापों का नाश न होने पर उन लोगों को निमिषं=एक क्षण निमिषार्धं वा= अर्धक्षण तक भी मुहूर्तम् अपि= एक मुहूर्त काल तक भी केशवे= श्रीहरि में भक्तिः= भक्ति न भवति= नहीं होती है।

विशेष 76-77. भगवान् श्रीहरि के विषय में भक्ति उत्पन्न होना साधारण विषय नहीं है। लाखों करोडों लोगों में एक दो असली भक्त होते हैं, जो पूर्णरूप से भगवान् के प्रति अर्पित होते हैं। अन्य लोग साधारण रूप से भक्ति करते हैं। परन्तु वहां भी पूर्वजन्मों के सुकृत के कारण ही उन को भक्ति उत्पन्न हुई हैं। जन्मजन्मान्तर में भी यदि भगवान् की अर्चना पूजा किया है तभी इस जन्म में उसी पुण्यकर्म के कारण भक्ति उत्पन्न होती है। परन्तु पूर्णरूप से भक्ति नहीं होती है। एक क्षण, आधाक्षण, एक मुहूर्त तक भक्ति होती है तो यह बहुत बडी बात होती है। अतः शंकर जी अपने पुत्र स्कन्द जी को बोल रहे हैं कि- भगवान् श्रीहरि की आराधना के बारे में पूछना बहुत अच्छा काम है। क्यूं कि भगवान् में भक्ति हुए बिना उस विषय में पूछ ही नहीं जा सकता। भक्ति उत्पन्न होना बहुत बडे भाग्य का फल है।

किं तेन मनसा कार्यं यन्न तिष्ठति केशवे।

मनो मुक्तिफलावाप्तिकारणं सुप्रयोजितम्॥ 78॥

सुप्रयोजितं= सही दिशा में उपयोग किया गया मनः= मन मुक्तिफलावाप्तिकारणं= मुक्तिरूप फल की प्राप्ति का कारण बनता है। यत्= जो मन केशवे=श्रीहरि के विषय में न तिष्ठति=स्थिर नहीं होता है तेन

मनसा= उस मन से किं कार्यम्= क्या प्रयोजन हैं ? (कुछ भी प्रयोजन नह
है)

रोगो नाम न सा जिह्वा यया न स्तूयते हरिः।

गर्तौ नाम न तौ कर्णौ याभ्यां तत्कर्म न श्रुतम्।। 79।।

यया= जिस जीभ के द्वारा हरिः =श्रीहरि की न स्तूयते= स्तुति नहीं क
जाती है सा= वह जीभ जिह्वा न= जीभ नहीं है। वह जीभ रोगः नाम= रो
ही है। याभ्यां= जिन कानों तत्कर्म= उस श्रीहरि की लीला को न श्रुतं= नह
सुना हों तौ= वे कान न कर्णौ= कान नहीं हैं। वे गर्तौ नाम= केवल छिद्र हैं।

नूनं तत्कण्ठशालूकमथवाऽप्युपजिह्विका।

रोगो नाम न सा जिह्वा या न वक्ति हरेर्गुणान्॥ 80॥

या=जो जीभ हरेर्गुणान्= श्रीहरि के गुणों का न वक्ति= स्तोत्र नहीं करती
वह जीभ नूनं= निश्चितरूप से तत् कण्ठशालूकं= कण्ठ में रहनेवाला कन
के समान होगी, अथवा उपजिह्विका अपि= अथवा वह जीभ उपजिह्विक
रोग के समान होगी, अथवा रोगो नाम= गलरोग ही है। सा= वह जी
जिह्वा न= जीभ नहीं है।

विशेष 78-80. मनुष्यों के बन्धन या मुक्ति दोनों के लिये मन ही साधन है
अतः उस मन को भगवान् के विषय में अनुरक्त कराना अत्यन्त आवश्यक है
मन भगवान् के विषय में एकाग्र होने पर मुक्ति सर्वथा प्राप्त होती है। यदि म
भगवान् के विषय में संलग्न नहीं है तब उस मन से कोई प्रयोजन नहीं है।
उसी तरह वाणी जो सारे विषयों के बारें में बात करती रहती है उस क
उपयोग श्रीहरि का गुणवर्णन में, तथा हरिनामकीर्तन में होना चाहिये। वाण
यदि भगवन्नामकीर्तन नहीं करती है तब वह वाणी नहीं होगी किन्तु कण्ठ

रहनेवाला एक सामान्य कन्द के समान होगी अथवा उपजिह्विका रोग के समान होगी। अथवा गलरोग के समान होगी। वह जिह्वा नहीं होगी।

जो कान भगवान् के गुण सुनता नहीं है, वह कान कान नहीं है किन्तु केवल खाली जगह है। वह कान सार्थक नहीं है।

उपजिह्विका एक रोग है जिससे जिह्वा के नीचे का भाग में स्थूलता आती है। रोग= गलरोग है जिस से कण्ठ में स्थूलता होती है।

भारभूतैः करैः कार्यं किं तस्य नृपशोर्द्विजाः।

यैर्हि न क्रियते विष्णोर्गृहसंमार्जनादिकम्॥ 81॥

यैः=जो हाथों के द्वारा विष्णोः गृहसंमार्जनादिकं= हरिमन्दिर के सफायी इत्यादि न क्रियते= नहीं किया जाता है तस्य नृपशोः= उस नररूपी जानवर का भारभूतैः= केवल वजन देनेवालें करैः =हाथों से किं कार्यं= क्या कार्य है ?

चरणौ तौ तु सफलौ केशवालयगामिनौ।

ते च नेत्रे महाभागे याभ्यां संदृश्यते हरिः॥ 82॥

केशवालयगामिनौ= हरिमन्दिर तक जानेवाले तौ चरणौ तु= वह पाद ही सफलौ= सफल हैं। याभ्यां = जिन के द्वारा हरिः =श्रीहरि का संदृश्यते= दर्शन किया जाता है ते च नेत्रे= वह नेत्र ही महाभागे= महाभाग्यशाली हैं।

किं तस्य चरणैः कार्यं वृथासंचरणैर्द्विजाः।

यैर्हि न व्रजते जन्तुः केशवालयदर्शने॥ 83॥

द्विजाः =हे ब्राह्मणों ! जन्तुः= पुरुष यैः= जिन पादों से केशवालयदर्शने= हरिमन्दिर का दर्शन हेतु न व्रजते= नहीं जाता है तस्य= उस पुरुष का

वृथासंचरणैः = व्यर्थ संचार करनेवाले चरणैः= पादों से किं कार्यं= कार्य है ?

विशेष 81-82. हमारे सभी अवयव तो भगवत्कार्य से सफल होंगे । उसी में हमारे हाथों से प्रति दिन श्रीहरिमन्दिर की सफायी करना चाहिये। कार्य के बिना हमारे हाथ सर्वथा व्यर्थ हो जायेंगे। हमारे पादों का हरिमन्दिर जाना है। उस के बिना व्यर्थ संचरण करनेवाले उन पैरों से प्रयोजन नहीं है। हमारे नेत्रों का उपयोग हरि का दर्शन से होना चाहिये। के बिना टी.वी, सिनिमा देखने हेतु आँखो का उपयोग करने से आंखे होंगी। अतः इन अवयवोंका सदुपयोग करना चाहिये जिस से हमारा ज सार्थक बनेगा।

वेदवेदाङ्गविदुषां मुनीनां भावितात्मनाम्।

ऋषित्वमपि धर्मज्ञ विज्ञेयं तत्प्रसादजम्॥ 84॥

धर्मज्ञ= धर्म का ज्ञानी हे ऋषे ! वेदवेदाङ्गविदुषां= वेद और वेदाङ्गों के ः भावितात्मनां= भगवान् के ध्यान करनेवाले मुनीनां= मुनियों को ऋ अपि =जो ऋषिपदवी प्राप्त हुई है वह भी तत्प्रसादजं= भगवान् का प्रसा ही प्राप्त हुई है विज्ञेयं= ऐसे समझना चाहिये।

विचित्ररत्नपर्यङ्के महाभोगे च भोगिनः।

रमन्ते नाकिरामाभिः केशवस्मरणात् फलम्॥ 85॥

भगवान् के भक्त भोगिनः= नानाविध सुख का अनुभव करते हुए महाभ अतीव सुखसाधन विचित्ररत्नपर्यङ्के= नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित प में नाकिरामाभिः = स्वर्ग के ऊर्वशी इत्यादि कामिनियों के साथ रम

़खानुभव प्राप्त करते हैं। यह सुखानुभव तो केशवस्मरणात् फलं=निरन्तर रिनामस्मरण का फल ही है।

अश्वमेधसहस्राणां यः सहस्रं समाचरेत्।

नासौ तत्फलमाप्नोति तद्भक्तैर्यदवाप्यते॥86॥

:= जो पुरुष अश्वमेधसहस्राणां= हजारों लाखों अश्वमेधयागों को ामाचरेत्= अनुष्ठान करता है असौ= वह पुरुष भी तद्भक्तैः= हरिभक्तों को त् फलं आप्यते= जो फल प्राप्त होता है तत्फलं= उस फल को न ाप्नोति= प्राप्त नहीं करता है।

ोशेष 84- 86. श्रीहरि सेवा-आराधना का फल अनेक प्रकार का होता है। रिभक्त जो कुछ भी पदार्थ को चाहते हैं वह पदार्थ उन को प्राप्त होता है । ुछ ज्ञानी लोग निरन्तर हरिभक्ति से हरिनाम कीर्तन कर श्रीहरि के प्रसाद से ़षि बन जाते हैं। ज्ञान का संपादन करना ही उन का मुख्य उद्देश्य होता है। रन्तु अन्य मध्यमस्तर के लोग यदि स्वर्गसुख चाहते हैं तो वे स्वर्गसुख को ाप्त करते हैं। स्वर्ग तो हरिस्मरण का मुख्य प्रयोजन नहीं है, किन्तु ोक्षप्राप्ति ही है। तथापि हरिस्मरण से यह स्वर्गवास इत्यादि अल्प फल भी च्छा के अनुरूप प्राप्त होता ही है। अनेक सहस्र अश्वमेधयज्ञों से जो फल ालता है उस से भी ज्यादा फल हरिस्मरण से प्राप्त होता है।

अगले श्लोकों में 94 तक हरिनमस्कार और परिक्रमा का फल का ोरूपण कर रहे हैं।

रे रे मनुष्याः पुरुषोत्तमस्य

करौ न कस्मान्मुकुलीकुरुध्वम्।

क्रियाजुषां को भवतां प्रयासः

फलं हि यत्तत्पदमच्युतस्य॥87॥

रे रे मनुष्याः= अरे नीचमनुष्यों ! पुरुषोत्तमस्य= श्रीहरि के सामने कस्मात्= क्यूं करौ न मुकुलीकुरुध्वं= हाथ नहीं जोड रहे हैं ? क्रियाजुषां=नानाविध कार्य करने में सक्षम भवतां= आप लोगों को हाथ जोडने में कः प्रयासः= क्या श्रम होता है ? यत्=जो अच्युतस्य पदं= श्रीहरि का स्थान है तत्= वही फलं= हाथ जोडने का फल है।

विष्णोर्विमानं यः कुर्यात्सकृद्भक्त्या प्रदक्षिणम्।

अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः॥88॥

यः= जो मानवः= पुरुष सकृत्= एकबार भक्त्या= भक्ति से विष्णोर्विमानं= श्रीहरि मन्दिर के विमान की प्रदक्षिणं कुर्यात्= परिक्रमा करता है वह पुरुष अश्वमेधसहस्रस्य= हजारों अश्वमेधयज्ञों के फलं= फल को आप्नोति= प्राप्त करता है।

प्रदक्षिणं तु यः कुर्याद्धरिं भक्त्या समन्वितः।

हंसयुक्तविमानेन विष्णुलोकं स गच्छति।। 89।।

यः=जो पुरुष भक्त्या= भक्ति से समन्वितः= युक्त होकर हरिं= हरि की प्रदक्षिणं कुर्यात् तु= परिक्रमा करता है सः= वह पुरुष हंसयुक्तविमानेन= हंसपक्षियों के विमान से विष्णुलोकं= विष्णुलोक वैकुण्ठ को गच्छति= प्राप्त करता है।

विशेष 87-89. हरि आराधना का मुख्य अङ्ग हैं परिक्रमा तथा नमस्कार अत 94 तक के श्लोकों मे परिक्रमा-नमस्कार इन दोनों की महत्ता को

प्रतिपादित कर रहे हैं। शंकर जी मनुष्यों से पूछ रहे हैं कि अरे नीचों ! श्रीहरि का नमस्कार करने में आप को क्या कष्ट होता है ? आप लोग प्रति दिन अनेक प्रकार का कार्य करते रहते हैं। दोनों हाथों जोडना, जिस से हाथों कमल मुकुल जैसा प्रतीत होते हैं, क्या बडा काम है ? श्रीहरि को प्रति दिन नमस्कार करना चाहिये। एक भी बार जो पुरुष विष्णुमन्दिर का गर्भगृह की परिक्रमा करता है वह पुरुष हजारों अश्वमेधयज्ञों का फल प्राप्त करता है। वह पुरुष हंसपक्षियों से चलनेवाला विमान में बैठ कर वैकुण्ठ लोक में चला जाता है। अतः प्रतिदिन हरिमन्दिर की परिक्रमा करना अत्यन्त आवश्यक है।

तीर्थकोटिसहस्राणि व्रतकोटिशतानि च।

नारायणप्रणामस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।। 90।।

तीर्थकोटिसहस्राणि= अनेक करोडों हजारों तीर्थ व्रतकोटिशतानि च=करोडों सैकडों व्रत यह सब मिलकर भी नारायणप्रणामस्य= श्रीहरि का प्रणाम का षोडशीं कलां= सोलहवे भाग के महत्त्व को भी न अर्हन्ति= प्राप्त नहीं करते हैं।

उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा।

पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः॥91॥

उरसा= छाती से, शिरसा= सिर से, दृष्ट्या= आँखों से, मनसा= मन से, तथा= उसी प्रकार वचसा= वाणी से, पद्भ्यां= दोनों चरणों से, कराभ्यां= दोनों हाथों से, जानुभ्यां= घुटनों से, इस प्रकार से प्रणामः=नमस्कार अष्टाङ्गः= आठ अंगवाला ईरितः= कहा गया है।

शाठ्येनापि नमस्कारं कुर्वतः शार्ङ्गपाणये।

शतजन्मार्जितं पापं नश्यत्येव न संशयः॥92॥

शार्ङ्गपाणये=शार्ङ्गनामक धनुष को धारण करनेवाला श्रीहरि को शाठ्ये
अपि= कुटिल रीति से भी नमस्कारं कुर्वतः= नमस्कार करनेवाले पुरुष व
शतजन्मार्जितं= सौ जन्मों में किया गया पापं= पापराशि भी नश्यति एव
नष्ट हो ही जाता है। न संशयः=इस में कोई संशय नहीं है।

विशेष- केवल हाथ जोडकर नमस्कार करना सामान्य है। परन्तु श्रीहरि
सामने धरती पर दण्डवत् होकर आठ अवयवों से पूर्ण प्रणाम करने का फ
तो अलग ही है। छाती, सिर, आंखे, मन, वाणी, हाथ, पैर, तथा घुटनें इ
आठों अंगो को धरती पर रखकर जो नमस्कार किया जाता है वह प्रणाम
इस प्रकार से प्रणाम करने पर जो पुण्य प्राप्त होता है उस पुण्य का एकदेश
हजारों करोडों तीर्थक्षेत्रों से, अनेक करोड व्रतों से भी प्राप्त नहीं होगा। जो
पुरुष भक्ति के बिना दुर्बुद्धि से, किसी बहाने से भी श्रीहरि को दण्डवत् प्रणा
करता है उस पुरुष के सैकडों जन्मों का पाप नष्ट हो जाता है।

संसारार्णवमग्नानां नराणां पापकर्मणाम्।
नान्योद्धर्ता जगन्नाथं मुक्त्वा नारायणं परम्।। 93।।

संसारार्णवमग्नानां= संसार सागर में डूबे हुए पापकर्मणां= पापक
करनेवाले नराणां=इन हीन मनुष्यों के उद्धर्ता= उद्धार करनेवाला पुरुष परं
अत्यन्त श्रेष्ठ नारायणं= श्रीहरि को मुक्त्वा= छोडकर न अन्यः= कोई न
है।

रेणुकुण्ठितगात्रस्य कणा यावन्ति भारत।
तावद्वर्षसहस्राणि विष्णुलोके महीयते॥94॥

भारत= हे युधिष्ठिर ! रेणुकुण्ठितगात्रस्य= प्रणाम करते समय भूमि के धूलियों से शरीर रंजित होता है। उस शरीर का कणाः = धूलीकण यावन्ति= जितने हजार हैं तावद्वर्षसहस्राणि= उतने हजार सालों तक विष्णुलोके= वैष्णव जनता में महीयते= पूजित किया जाता है।

विशेष- 93-94. इस संसार में पडे हुए हम लोगों की रक्षा करनेवाला उद्धारक पुरुष श्रीहरि ही हैं। श्रीहरि को छोडकर दूसरा कोई पुरुष हमारी रक्षा नहीं कर सकता है। अतः विष्णु को प्रसन्न करना अत्यन्त आवश्यक है। उस श्रीहरि को प्रतिदिन प्रणाम करना चाहिये। प्रणाम करते समय हमारे शरीर हरिमन्दिर की मिट्टी का धूलीकणों से लिप्त होना चाहिये। उसी प्रकार प्रणाम करना चाहिये। उस पुरुष के शरीर में जितने धूलीकण होते हैं उतने ही सालों तक भक्तजनों में उस पुरुष की पूजा होती रहेगी।

पावनं विष्णुनैवेद्यं सुभोज्यमृषिभिः स्मृतम्।
अन्यदेवस्य नैवेद्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥95॥

विष्णुनैवेद्यं= भगवान् श्रीहरि को अर्पित भोग पावनं= अत्यन्त पवित्र है। अतः= प्रतिदिन उस भोग को सुभोज्यं= प्रसाद के रूप में खाना चाहिये। इस प्रकार ऋषिभिः= ऋषियों के द्वारा स्मृतं= स्मृतियों में कहा गया है। अन्यदेवस्य रुद्र इन्द्र इत्यादि दूसरी देवताओं का नैवेद्यं= समर्पित भोग को भुक्त्वा= भोजन कर प्रायश्चित्तहेतु चान्द्रायणं चरेत्= चान्द्रायणव्रत का अनुष्ठान करना चाहिये।

कोट्यैन्दवसहस्रैस्तु मासोपोषणकोटिभिः।
यत्फलं लभ्यते पुम्भिर्विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात्॥96॥

कोट्यैन्दवसहस्रैः= हजारों करोडों चान्द्रायणव्रतों से तथा मासोपोषण कोटिभिः= करोडों मास उपवासों से पुंभिः= मनुष्यों को यत्फलं= जो फ लभ्यते= प्राप्त होता है वह फल विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात्= विष्णु को निवेदि भोग को खाने से मिल जाता है।

विष्णोर्नैवेद्यशेषेण यो भुनक्ति दिने दिने।
सिक्थे सिक्थे भवेत्पुण्यं चान्द्रायणशताधिकम्।।97।।

विष्णोः= श्रीहरि का नैवेद्यशेषेण= निवेदित अन्न को यः= जो पुरुष दि दिने= प्रतिदिन भुनक्ति= भोजन करता है उस पुरुष को सिक्थे सिक्थे= ह ग्रास में भी चान्द्रायणशताधिकं= सैकडों चान्द्रायण व्रतों के फल से भ अदिक पुण्यं= पुण्यफल भवेत्= प्राप्त होता है।

विशेष 95-97. इन तीनों श्लोकों में हरि को निवेदित अन्नशेष भक्षण के फ का निरूपण है। सारे स्मृतिग्रन्थों में ऋषियों के द्वारा बताया गया है कि प्रतिदिन विष्णु को निवेदित अन्न ही खाना है। विष्णुनैवेद्य प्रतिदिन खाने करोडों चान्द्रायणव्रत, मासोपवास इत्यादि से जो फल प्राप्त होता है उस अधिक फल प्राप्त होता है। विष्णुनिवेदित अन्न का एक एक ग्रास के भक्ष से सैकडों चान्द्रायण व्रतों के फल से भी अधिक पुण्यफल प्राप्त होता है। अत प्रतिदिन श्रीहरि को भोग लगाकर ही उसे खाना चाहिये। श्रीहरि व निवेदित अन्नभक्षण का मुख्य सार यह है कि “सब परमात्मा के अधीन है इन के द्वारा जो वस्तु दिया जाता है उस वस्तु का ही उपभोग करन चाहिये”। श्रीहरि नैवेद्य के भक्षण से ही श्रीहरि के द्वारा रची गयी इस माय से बच सकते है।

चान्द्रायणव्रत में शुक्लपक्ष में पूर्णिमा तक प्रतिदिन एक एक ग्रास यादा कर भोजन करते हैं। कृष्णपक्ष में अमावास्या तक प्रतिदिन एक एक ास कम करते हैं। अमावस के दिन पूर्ण निराहार होते हैं।

मासोपवास में पूरे मास उपवास करते हैं।

विष्णु को छोडकर दूसरे रुद्र इत्यादि देवताओं को समर्पित भोग को साद के रूप में नहीं खाना चाहिये। क्यूं कि विष्णुभक्त होने पर भी इन वताओं में कभी कभी कलि का प्रभाव दिखाई देता है। अतः कदाचित् शंकर ी भगवान् से लडते हैं। असुरों को वर देते हैं। अतः ये देवताएं संपूर्णरूप से ुद्ध नहीं होती हैं। परन्तु हनुमान जी अत्यन्त शुद्ध विष्णुभक्त है। उन में कभी ी कलि का प्रभाव नहीं दिखाई देता है। बालाजी कभी भी भगवान् के विरुद्ध ार्य नहीं करते हैं। अतः हनुमान् जी के भी भोग को स्वीकार करते हैं। यह ध्वाचार्य जी का संप्रदाय है। मध्वाचार्य जी साक्षात् वहीं प्राणदेव के अवतार । अतः मध्वाचार्य जी को निवेदित अन्न का ग्रहण संप्रदाय में करते हैं।

गले श्लोकों में हरिपादोदक की महिमा का प्रतिपादन है।

त्रिरात्रफलदा नद्यो याः काश्चिदसमुद्रगाः।

समुद्रगाश्च पक्षस्य मासस्य सरिता पतिः।।९८।।

षण्मासफलदा गोदा वत्सरस्य तु जाह्नवी।

विष्णुपादोदकस्यैताः कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।९९।।

ामुद्रगाः= समुद्र में साक्षात् प्रवहित न होने वाली याः काश्चित्= ये जो ाः =नदियां हैं (वे नदियाँ) त्रिरात्रफलदाः= तीन दिन के उपवास से जो ल उत्पन्न होता है (इन नदियों में स्नान करने से) उस फल को देती है।

समुद्रगाः तु= समुद्र में साक्षात् प्रवाहित होने वाली नर्मदा इत्यादि नदियाँ तो पक्षस्य फलदाः= पन्द्रह दिन के उपवास के फल को देती हैं। सरितां= नदियों की पतिः= भर्ता समुद्रराज तो मासस्य फलदः= एक मास के उपवास का फल देते है। लेकिन एताः= ये नदियाँ विष्णुपादोदकस्य= शालिग्राम शिला से निकला हुआ चरणामृत के षोडशीं= सोलहवीं कलां= भाग को भी न अर्हन्ति= प्राप्त नहीं कर सकती हैं।

विशेषार्थ- पूर्वश्लोक तक विष्णु निवेदित अन्न की महिमा को बताया है आगे से शालिग्रामादि विष्णुप्रतिमा से निकला हुआ चरणामृत का फल को विशिष्ट रीति से प्रतिपादित किया जा रहा है। तीन दिन के उपवास से जो फल होता है उस को देती है समुद्र तक प्रवाहित न होने वाली क्षुद्र नदियाँ क्यूँकि नदियाँ तो समुद्रराज के भार्याएं हैं। अतः अपने पति को जो नदी साक्षात् प्राप्त करती है उसको श्रेष्ठ माना है अतः समुद्रगामिनी गङ्गा सिन्धु नर्मदा गोदावरी कावेरी इत्यादि नदियाँ अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। बाकी नदियों को इतना उत्कृष्ट नहीं माना गया है। तथापि यमुना इत्यादि समुद्र में न जानेवाली नदियों में स्नान करने से तीन दिन के उपवास का फल प्राप्त होता है, नर्मदा कावेरी इत्यादि समुद्रगामिनी नदियों में स्नान करने से तो एक महीना उपवास का फल प्राप्त होता है, गोदावरी स्नान करने से छह माह उपवास का फल होता है। सब नदियों से उत्कृष्ट जो गङ्गाजी है उस में स्नान करने से एक साल उपवास करने से उत्पन्न होनेवाला फल प्राप्त होगा । परन्तु विष्णु प्रतिमा से निकला हुआ हरिपादोदक (शालिग्राम शिला तीर्थ) को पीने से जो फल होगा उस फल का सोलहवा अंश भी इन नदियों में स्नान करने से प्राप्त नहीं होगा। अतः इन सब नदी समुद्रों से हरिचरणामृत ही उत्कृष्ट है प्रतिदिन शालिग्राम इत्यादि विष्णुप्रतिमा को अभिषेक कर उस चरणामृत को

पीने से गङ्गाजी इत्यादि नदियों में स्नान करने से भी अत्यधिक फल प्राप्त होता है। प्रतिदिन विष्णु पादोदक सेवन से बारह सालों के उपवास का फल प्राप्त होता है इस प्रकार स्कन्द पुराण में लिखा है।

गङ्गाप्रयागगयपुष्करनैमिषाणि

संसेवितानि बहुशः कुरुजाङ्गलानि।

कालेन तीर्थसलिलानि पुनन्ति पापं

पादोदकं भगवतः प्रपुनाति सद्यः॥ १००॥

गङ्गाप्रयागमयपुष्करनैमिषाणि= गङ्गानदी-प्रयाग क्षेत्र- गया क्षेत्र-पुष्कर तीर्थ- नैमिषारण्य क्षेत्र इत्यादि तीर्थ क्षेत्र तथा कुरुजाङ्गलानि= कुरुक्षेत्र इत्यादि क्षेत्र भी बहुशः= अनेक बार संसेवितानि=सेवित किए गये हैं। किन्तु तीर्थसलिलानि = इन क्षेत्रों में बहने वाली गङ्गा इत्यादियों के जलराशियां कालेन= लम्बे समय तक सेवन करने पर ही पापं= हमारे पापराशि को पुनन्ति= नाश करते हैं। परन्तु भगवतः= भगवान् श्रीकृष्ण का पादोदकं= चरणामृत तो सद्यः = तत्काल प्रभाव से प्रपुनाति= पापराशि को नष्ट करता है।

विशेष- विष्णुपादोदक न केवल पुण्यप्रद है। अपि तु पापराशियों को भी अविलम्ब दूर करता है। प्रयाग गया क्षेत्र नैमिषारण्य इत्यादि क्षेत्रों में बहने वाली गङ्गा इत्यादि नदियों में बहुत समय तक स्नान करने से ही पाप राशि नष्ट होता है, परन्तु भगवत्पादोदक को पीने से तुरन्त ही पाप नष्ट होता है।

यानि कानि च तीर्थानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि च।

विष्णुपादोदकस्यैते कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ १०१॥

ब्रह्माण्डान्तर्गतानि= इस ब्रह्माण्ड में यानि कानि च= जितने ३
तीर्थानि=तीर्थ और क्षेत्र हैं एते = ये सब विष्णुपादोदकस्य
हरिचरणाभिषेक जल का षोडशीं= सोलहवी कलां =कला को भी
अर्हन्ति= प्राप्त कर नहीं पाते हैं।

विशेषार्थ- न केवल पूर्वश्लेक में वर्णित नदी समुद्र क्षेत्र जो पृथ्वी में हैं कि
पूरे ब्रह्माण्ड में जितने भी नद-नदियां तथा क्षेत्र हैं वे सब मिलके ३
शालिग्राम शिला तीर्थ का सोलहवें भाग की महत्ता को भी प्राप्त नहीं करेंगें।

स्नात्वा पादोदकं विष्णोः पिबन् शिरसि धारयेत्।

सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवीं सिद्धिमाप्नुयात्।।102।।

स्नात्वा = स्नान करने के बाद विष्णोः= विष्णु भगवान् का पादोदकं
चरण से निर्गलित चरणामृत को पिबन् =पीकर शिरसि=सिर में धारयेत्
उस चरणामृत को धारण करना चाहिए। ऐसे करने र
सर्वपापविनर्मुक्तः=सब प्रकार के पापों से मुक्त हो कर वैष्णवीं सिद्धिं
विष्णुभगवान् के ज्ञान को आप्नुयात्= प्राप्त करेगा।

विशेषार्थ- स्नान करने के बाद भगवच्चरणामृत को पी कर शिर में धार
करने से सब पापों से मुक्ति मिल जाती है। तथा भगवान् के ज्ञान को प्रा
करेगा।

यथा पादोदकं पुण्यं निर्माल्यं चानुलेपनम्।

नैवेद्यं धूपशेषं च आरार्तिश्च तथा हरेः॥ १०३॥

हरेः=भगवान् के पादोदकं= चरणामृत यथा= जिस प्रकार से पुण्यं
अत्यन्त पुण्यप्रद है। तथा=उसी प्रकार से निर्माल्यम्= पूर्वदिन मे भगवान्

समर्पित निर्माल्य तुलसीदल अनुलेपनं= भगवान् के समर्पित श्री गन्ध नैवेद्यं= भगवान् के लिए लगाया गया भोग धूपशेषः च= भगवान् के लिए समर्पित सुवासित धूप आरार्तिः च= भगवान् के मङ्गल आरती ये सब पदार्थ तथा= अत्यन्त पुण्यप्रद है।

विशेषार्थ- भगवान् के लिए समर्पित वस्तुओं का सेवन हम लोगों को करना चाहिए इस सिद्धान्त का यह श्लोक प्रतिपादन कर रहा है। पूर्वदिन में भगवान् को समर्पित तुलसीदल फूल इत्यादि, घिसा हुआ श्रीगन्ध, भगवान् के निवेदित किया गया सब प्रकार के अन्न, तथा अभिषेचन के बाद भगवान् को समर्पित सुवासित धूप के शेष कोयला, मङ्गलारति यह सब अत्यन्त ही पवित्र वस्तु होने के कारण इन्हीं वस्तुओं का उपयोग करना चाहिए।

तुलस्यास्तु रजोजुष्टनैवेद्यस्य च भक्षणम्।
निर्माल्यं शिरसा धार्यं महपातकनाशनम्॥ १०४॥

तुलस्याः तु= तुलसी जी के रजोजुष्ट नैवेद्यस्य= कण से सम्बन्ध रखने वाला भगवन्निवेदित भोग अन्न इत्यादि को भक्षणम् = खाना चाहिए तथा भगवान् को पूर्व दिन मे समर्पित निर्माल्य शेष को शिरसा= सिर मे धार्यम्=धारण करना चाहिए यह दोनों ही महापातकनाशनम्= सब तरह के महापापों को नाश करेंगें।

विशेष- इस श्लोक में तुलसी जी के महत्त्व को प्रतिपादन कर रहे हैं जब भी भघवान को भोग लगायेंगें तब अवश्य भोग में तुलसी पत्र को डालना चाहिए उस प्रकार से लगाया गया भोग को खाना अत्यन्त पवित्र होता है। तथा पूर्वदिन में भगवान् को समर्पित तुलसी- पुष्प इत्यादि निर्माल्य शेष को सिर में धारण करना चाहिए।

भक्त्या वा यदि वाऽभक्त्या चक्राङ्कितशिलां प्रति।

दर्शनं स्पर्शनं वाऽपि सर्वपापप्रणाशनम्॥ १०५॥

भक्त्या वा= भक्तिपूर्वक यदि वा= अथवा अभक्त्या= भक्तिके बिना भी चक्राङ्कितशिलां प्रति= चक्र से अङ्कित शालिग्राम शिला को दर्शनं= देखना अपि वा= अथवा स्पर्शनं= स्पर्श करना ये दोनों सर्वपापप्रणाशनम्= सब पापों को नाश कर देते हैं।

विशेषार्थ- पूर्वश्लोक में भगवान् के चरणामृत का महत्त्व प्रतिपादित किया है। अब उस का कारण बताया जा रहा है क्योंकि यदि कोई पुरुष भक्तिसे या भक्ति के बिना भी शालिग्राम शिला (ठाकुर जी) को देखता है अथवा स्पर्श करता है उतने मात्र से ही सब पाप नष्ट हो जायेंगे। अतः शालिग्राम शिला अत्यन्त पवित्र होती है उस शिला से निर्गलित होने के कारण ही भगवान् चरणामृत भी अत्यन्त महत्त्व प्राप्त करता है। अत एव गङ्गा इत्यादि नदियों से भी उत्कृष्ट होता है।

शालग्रामोद्भवो देवो देवो द्वारवतीभवः।

उभयोः स्नानतोयेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ १०६॥

सालग्रामोद्भवः= दामोदर कुण्ड से उद्भूत जो शालिग्राम शिला है वह देवः= भगवान् के आवासस्थान है । तथा भगवान् के प्रतिमास्वरूप है। उभयोः= इन दोनों शिलाओं के स्नानतोयेन= अभिषेक जल से ब्रह्महत्यां= ब्राह्मणवध जैसे महापातक को भी व्यपोहति= दूर कर सकते हैं।

विशेष- नेपाल देश के गण्डकी नदी तीर में स्थित दामोदर कुण्ड से निर्गमित जो शालिग्रामशिला है तथा द्वारका में समुद्र से पैदा होने वाला चक्राङ्कशिला

है यह दोनों शिलाएं भगवान् के नित्य आवासस्थान है। इस लिए भगवान् की पूजा करते समय आवाहन करने की आवश्यकता भी नहीं होती है। अतः इन दोनों के अभिषेक जल से अबुद्धिपूर्वक किया गया ब्रह्महत्या दोष भी नष्ट होता है। परन्तु यह ब्रह्महत्या यदि बुद्धिपूर्वक की गई हो तो कभी भी नष्ट नहीं होगी।

म्लेच्छदेशेऽशुचौ वाऽपि चक्राङ्को यत्र तिष्ठति।

योजनानि तथा त्रीणि मम क्षेत्रं वसुंधरे॥ १०७॥

वसुन्धरे= हे भूदेवी ! म्लेच्छदेशे= वर्णाश्रमव्यवस्थारहित म्लेच्छदेश में वा = अथवा अशुचौ अपि = दूसरे अशुद्ध प्रदेशों में भी यत्र = जिस जगह में चक्राङ्कः= शालिग्रामशिला तिष्ठति= रहती है वह जगह तथा उसके पास वाला त्रीणि योजनानि = तीन योजन तक का जगह मम= मेरा (भगवान् का) क्षेत्रं= क्षेत्र मानना चाहिए ।

विशेष- वराह भगवान् भू देवी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि भारत भूमि के बाहर वर्णाश्रमव्यवस्था रहित जो भी भूभाग है उसको म्लेच्छदेश कहा गया है। वह वास योग्य नहीं है । तथा भारत भूमि में भी अङ्ग वङ्ग कलिङ्ग इत्यादि देशों को अशुचि माना गया है। परन्तु इस तरह के जगह में भी यदि शालिग्रामशिला होती है तो उसको तथा उस के चारों दिशाओं में तीन योजन तक (नौ कोस तक) के जगह को भी भगवत्क्षेत्र ही माना जाता है । वह पुण्यक्षेत्र है।

शालग्रामोद्भवो देवो शैलं चक्राङ्कमंडितम्।

यत्रापि नीयते तत्र वाराणस्याः शताधिकम्॥ १०८॥

शालिग्रामोद्भवः=दामोदर कुण्ड से निर्गलित देवः= देवप्रतिमा स्वरूप शालिग्राम शिला तथा चक्राङ्कमण्डितम्= चक्र जैसे चिन्ह से अङ्कित शैलम् =शिलारूपी देव प्रतिमा (चक्राङ्कितशिला) को यत्रापि= जहाँ कहीं भी नीयते= लेकर के जाते है तत्र = उस जगह में रहने वाले लोगों को वाराणस्याः= वाराणसी क्षेत्र से शताधिकं = सौ गुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है।

विशेष- अशुचि क्षेत्रों में शालिग्राम शिला तथा चक्राङ्कशिला यदि स्वतः ही रहती है अथवा किसी के द्वारा ले गयी जाती है तब भी वह क्षेत्र वाराणसी से सौ गुणा अधिक पवित्र माना जाता है।

शालग्रामोद्भवो देवो देवो द्वारवतीभवः।

उभयोः संगमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः॥१०९॥

शालिग्रामोद्भवः= शालिग्राम शिलारूपी देवः= देवप्रतिमा तथा द्वारवतीभवः= द्वारका में उद्भूत चक्राङ्करूपी देवः= देवप्रतिमा उभयोः= इन दोनों के संगमः= समागम यत्र =जिस जगह पर होता है तत्र=उस जगह में मुक्तिः= मुक्ति ही प्राप्त होगी। इस विषय में संशयः= कोई संशय न= नहीं है।

विशेषार्थ- शालिग्राम शिला तथा चक्राङ्क शिला जो द्वारिका में मिलती है दोनों एक जगह में होने पर वह जगह मुक्तिदायक ही होता है।

हरिणा मुक्तिदानीह मुक्तिस्थानानि सर्वशः।

स यस्य सर्वभावेषु तस्य तैः किं प्रयोजनम्।। ११०।।

इह= इस धरती पर जो जो मुक्तिस्थानानि= मुक्तिप्रदायक दिव्य तीर्थ क्षेत्र हैं सर्वशः= वे सब भी हरिणा= उन तीर्थ क्षेत्रों में भगवान् के विशेष संन्निधि होने के कारण ही मुक्तिदानि= मुक्तिदायक है। जिस साधक की दृष्टि में सर्वभावेषु = सभी पदार्थों में सः= ऐसा भगवान् ही हैं तस्य=उस साधक को तैः= इन तीर्थ क्षेत्रों से किं प्रयोजन= क्या लाभ है?

विशेषार्थ- तीर्थक्षेत्र स्वयं महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। किन्तु उन में भगवान् श्री विष्णु जी के विशेष अभिव्यक्ति होने के कारण ही उनहीं उन की महत्ता बनी है। हम जैसे मन्दाधिकारी जो सर्वत्र भगवान् को देख नहीं पायेंगे, उन के लिए ही तीर्थ क्षेत्रों की आवश्यकता होती है। जो उत्तमाधिकारी साधक सब वस्तुओं में भगवान् को देख पाता है उस के लिए तीर्थ क्षेत्र यात्रा व्यर्थ ही होगी।

हरिर्याति हरिर्याति दस्युव्याजेन यो वदेत्।
सोऽपि सद्गतिमाप्नोति गतिं सुकृतिनो यथा॥ १११॥

दस्युव्याजेन = वैर के कारण से भी यः= जो भी पुरुष हरिः याति हरिः याति= 'भगवान् जा रहा है' 'भगवान् जा रहा है' ऐसा वदेत्= बोलता है सः अपि = वह भी यथा= जिस प्रकार से सुकृतिनः= पुण्यवान् लोग गतिं= अच्छी गति को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार से सद्गतिं= अच्छी गति को आप्नोति= प्राप्त करता है।

विशेष- भगवान् को भक्तिपूर्वक पुकारने वाले लोग निःसंशय ही सद्गति को प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार भक्ति के विना द्वेष के बहाने भी जिस पुरुष भगवान् का नामस्मरण करेगा वह भी अच्छी गति को प्राप्त करेगा। शिशुपाल इत्यादि राक्षस लोग श्रीकृष्ण जी को द्वेष करते थे, परन्तु उस द्वेष के अन्दर भी भक्ति

की ज्वाला बनी रही थी, उसी कारण उन को भी सद्गति प्राप्त हुई। ‘द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः’ इस भागवत वाक्य भी इस विषय को प्रतिपादन करता है।

वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते।

त्यक्त्वाऽमृतं स मूढात्मा भुङ्क्ते हालाहलं विषम्।। ११२।।

यः= जो पुरुष वासुदेवं= भगवान् श्री कृष्ण को परित्यज्य= छोडकर अन्यं= दूसरी दैवं= देवता की उपासते= उपासना करता है सः= वह मूढात्मा= मूर्ख पुरुष अमृतं= क्षीरसागर से उत्पन्न अमृत को त्यक्त्वा = छोडकर हालाहलं विषं= हाला हल विष को भुङ्क्ते= भोग करता है।

विशेष- अमृत को छोडकर विष पीने वाले आदमी की स्थिति ही भगवान् श्रीकृष्ण को छोडकर दूसरी देवताओं की उपासना करने वाले आदमी की स्थिति है।

त्यक्त्वाऽमृतं यथा कश्चिदन्यपानं पिबेन्नरः।

तथा हरिं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते॥ ११३॥

कश्चित् नरः= कोई पुरुष यथा = जिस प्रकार से अमृतं= अमृत को छोडकर अन्यपानं= मदिरा इत्यादि द्रव्य को पिबेत्= पीता है तथा= उसी प्रकार से यः= जो पुरुष हरिं = भगवान् को परित्यज्य= छोडकर अन्यं देवं= दूसरे शिव स्कन्द इत्यादि देवताओं की उपासते= उपासना करता है वह पुरुष भी निन्दित है।

स्वधर्मं तु परित्यज्य परधर्मं यथा चरेत्।

तथा हरिं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते॥ ११४॥

कोई हिन्दू पुरुष यथा = जिस प्राकार से स्वधर्मं तु= स्वकीय यज्ञ-दानादि हिन्दू आचरणों को परित्यज्य= छोडकर परधर्मं= मुसलमान इत्यादि धर्मों का चरेत्= आचरण करता है तथा= उस प्रकार से यः= जिस पुरुष हरिं परित्यज्य= भगवान् श्रीकृष्ण जी को छोडकर अन्यं देवं= दूसरी देवताओं की उपासते= उपासना करता है वह अत्यन्त निन्दित है।

यथा गङ्गोदकं त्यक्त्वा पिबेत् कूपोदकं नरः।

तथा हरिं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते॥ ११५॥

नरः=कोई पुरुष यथा= जिस प्रकार गङ्गोदकं = साक्षात् गङ्गाजी के पानी को त्यक्त्वा= छोडकर कूपोदकं= अपने गांव के कुँए का पानी को पिबेत्= पीता है तथा =उसीप्रकार यः= जो पुरुष हरिं परित्यज्य= भगवान् श्रीकृष्ण जी छोड कर अन्यं देवं दूसरी देवताओं की उपासते उपासना करता है वह पुरुष अत्यन्त निन्दित है।

गां च त्यक्त्वा विमूढात्मा गार्दभीं वन्दते यथा।

तथा हरिं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते॥ ११६॥

विमूढात्मा= जो मूर्ख व्यक्ति यथा= जिस प्रकार गां च= गोमाता को त्यक्त्वा= छोड कर गार्दभीं= गधे को वन्दते= नमस्कार करता है तथा= उसी प्रकार यः= जो पुरुष हरिं= परित्यज्य भगवान् श्रीकृष्ण जी को छोडकर अन्यं देवं= दूसरी देवताओं की उपासते= उपासना करता है।

स्वमातरं परित्यज्य श्वपाकीं वन्दते यथा।

तथा हरिं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते॥ ११७॥

यथा= जिस प्रकार कोई मूर्खपुरुष स्वमातरं= अपनी माताजी को परित्यज्य =छोडकर श्वपाकीं= कुत्ते को पकाकर खानेवाली नीच महिला को वन्दते= वन्दन करता है, तथा= उस प्रकार यः= जो पुरुष हरिं परित्यज्य= भगवान् को छोडकर अन्यं देवं= दूसरी देवताओं की उपासते= उपासना करता है वह अत्यन्त निन्दित है।

वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते।
तृषितो जान्हवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः ॥११८॥

यः= जो पुरुष वासुदेवं= भगवान् श्रीकृष्ण जी को परित्यज्य =छोडकर अन्यं देवं= दूसरो देवताओं की उपासते= उपासना करता है वह पुरुष, दुर्मतिः = जो मूर्ख तृषितः= अत्यन्त पिपासित होकर जाह्नवीतीरे= गङ्गाजी के तटपर कूपं= कूवे को खनति= खुदाई करनेवाला पुरुष जैसा है।

विशेषार्थ- 112 से 118 तक के श्लोकों में अनेक उदाहरण देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण जी की उपासना छोडकर दूसरी देवता ओं की उपासना करनेवाले व्यक्ति की निन्दा कर रहे है। अमृत को छोडकर हलाहल विष या अन्य मदिरा इत्यादि द्रव्यों को सेवन करनेवाला, गङ्गातीर में रहते हुए भी गङ्गाजी के पानी को छोडकर कूवे के पानी पीनेवाला, गोमाता को छोडकर गधे को पूजनेवाला, अपनी जननी को छोडकर श्वपाकी की उपासना करनेवाला, ब्राह्मण जन्मोचित यज्ञ याग स्नान संध्या इत्यादि को छोडकर मुसलमान धर्म का अनुसरण करनेवाला पुरुष जिस प्रकार से अत्यन्त निन्दित है, उसी प्रकार भगवान् को छोडकर दूसरी देवताओं की उपासना करनेवाला भी अत्यन्त निन्दित है।

यह सारे वचन साक्षात् शंकर जी के मुख से निकले हुए हैं।

यावत्स्वस्थमिदं पिण्डं निरुजं करणान्वितम्।

तावत्कुरुष्वात्महितं पश्चात्तापेन तप्यसे॥ ११९॥

इदं पिण्डं=यह पार्थिव शरीर यावत्= जब तक स्वस्थं= स्वास्थ्य से परिपूर्ण निरुजं= रोगों के बिना करणान्वितं= सब प्रकार के ज्ञानेन्द्रिय- कर्मेन्द्रियों से संवलित होकर कार्य समर्थ होता है तावत्= तब तक आत्महितं= अपनी आत्मा के आवश्यक भगवत्पूजादि कर्म कुरुष्व=करो। यदि ऐसा नहीं किया तो पश्चात् =बाद में (वार्धक्य अथवा मरणोपरान्त) तापेन= नरक से तप्यसे= कष्ट भोगना पडेगा।

यावत्स्वास्थ्यं शरीरेषु करणेषु च पाटवम्।

तावदर्चय गोविन्दमायुष्यं सार्थकं कुरु॥ १२०॥

यावत्= जब तक शरीरेषु = देह में स्वास्थ्यं= स्वस्थता होती है तथा करणेषु= इन्द्रियों में पाटवं च= बल भी होता है तावत्= तब तक गोविन्दं =भगवान् श्रीकृष्ण जी की अर्चय= अर्चना करो। आयुष्यं= अपने जीवित को सार्थकं कुरु = सार्थक बनाओ।

स्मर्यतां तु हृषीकेशो हृषीकेषु दृढेषु च।

अदृढेषु हृषीकेषु हृषीकेशं स्मरन्ति के॥ १२१॥

हृषीकेषु च = इन्द्रियों के दृढेषु= दृढ होते हुऐ ही हृषीकेशः तु= भगवान् श्रीकृष्ण जी का स्मर्यतां= स्मरण किया जाए। क्यों कि हृषीकेषु= इन्द्रियों के अदृढेषु= बल हीन होने पर हृषीकेशं= भगवान् को के= कौन स्मरन्ति= स्मरण कर सकते हैं? (कर नहीं सकते हैं)

यावच्चिन्तयते जन्तुर्विषयान् विषसंनिभान्।

तावच्चेत्स्मरते विष्णुं को न मुच्येत बन्धनात्।।१२२।।

जन्तुः= जन्तुसदृश यह पुरुष यावत्= जिस समय में विषसंनिभान्= विष के सदृश विषयान्= विषय पदार्थों को चिन्तयते= चिन्तन करता रहता है तावत्= उसी समय में विष्णुं= भगवान् का स्मरते चेत्= स्मरण करेगा तो कः= कौन बन्धनात्= इस संसारबन्धन से न मुच्येत= मुक्त नहीं होगा? (अवश्य ही मुक्त होगा)

यावत्प्रलपते जन्तुर्लोकवार्तादिभिः सदा।

तावच्चेद्वदते विष्णुं को न मुच्येत बन्धनात्।।१२३।।

जन्तुः= जन्तुसदृश यह पुरुष सदा= सर्वदा यावत्= जिस काल तक लोकवार्तादिभिः= सांसारिकविचारों के प्रलपते= प्रलाप करता रहता है तावत् = उसी समय में विष्णुं= भगवान् श्रीकृष्ण को वदते चेत्= पुकारेगा तो कः =कौन बन्धनात्= संसारबन्धन से न मुच्यते= मुक्त नहीं होगा? (अवश्य ही मुक्त हो जाता है)

विशेषार्थ- 119 से 123 श्लोक तक एक ही विषय है। जब तक हमारे दस इन्द्रिय कार्य करने हेतु सक्षम है तब तक सर्वदैव भगवान् श्रीकृष्ण जी का स्मरण अवश्य करना चाहिये। जब वार्धक्य में सारे इन्द्रिय दुर्बव होजायेंगे नामस्मरण करने में भी सक्षम न होगा, तब भगवान् के स्मरण अर्चना पूजा कैसे हो सकती है? मरण के बाद जब यमलोक में जायेंगे उस समय क्या उपासना कर सकता है ? अतः शरीर जब तक सुस्थिर रहता है तब तक भगवदाराधना करते रहना चाहिये।

टी वी रेडियो, नाच गाना, खेल कूद, राजनीति इत्यादि लौकिक वार्ता में पूरे समय बीत जाता है। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण जी के स्मरण करने हेतु समय समय मिल नहीं पाता है। अतः स्वकीय शक्त्यनुसार सर्वदा भगवन्नामस्मरण करना चाहियें। भगवन्नामस्मरण ही मुक्ति का कारण है।

अब 169 श्लोक तक एकादशी की महत्ता को सूत जी बचनों के द्वारा प्रतिपादन करते है।

सूतः-

ज्ञात्वा विप्रास्तिथिं सम्यग् दैवज्ञैः समुदीरिताम्।
कर्तव्य उपवासस्तु ह्यन्यथा नरकं व्रजेत्।। १२४।।

विप्राः= हे शौनकादि ऋषियों ! दैवज्ञैः= ज्योतिःशास्त्र के पण्डितों से समुदीरितां= निर्णीत की गयी तिथिं= एकादशी तिथि को सम्यक्= अच्छे तरह से ज्ञात्वा= समझ कर उपवासः तु= उपवास कर्तव्यः= करना चाहिये। अन्यथा हि= तिथि का ज्ञान गलत होने से गलत तिथि में उपवास करने पर नरकं=नरक को व्रजेत्= प्राप्त करेगा।

विशेष- एकादशी के दिन उपवास करना प्रत्येक विष्णुभक्त का अत्यन्त मुख्य कर्तव्य है। परन्तु जिस दिन अरुणोदय काल में दशमी तिथि रहती है बाद में एकादशी तिथि आती है वह विद्ध एकादशी होगी। उस दिन उपवास करने से नरक प्राप्त होगा। अतः अच्छे ज्योतिषियों से एकादशी तिथि का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। यह शौनकादि ऋषियों को संबोधित कर सूत जी कह रहे हैं।

क्षये वाऽप्यथवा वृद्धौ संप्राप्ते वा दिनक्षये।

उपोष्या द्वादशी पुण्या पूर्वविद्धां परित्यजेत्॥ १२५॥

क्षये वा = नवमी दशमी एकादशी इन तिथियों का क्रमशः उत्तरोत्तर ह्रास होने पर अथवा= अथवा वृद्धौ= क्रमशः तिथियों के बढने पर वा= अथव दिनक्षये= दिनक्षय संप्राप्ते= प्राप्त होने पर पुण्या= पुण्यकर द्वादशी= द्वादशी तिथि में उपोष्या =उपवास करना चाहिये। पूर्वविद्धां= दशमी से संसृ एकादशी को परित्यजेत्= छोडना चाहिये।

विशेष- तिथियों में कभी कभी वृद्धि अथवा ह्रास होता है। जैसे नवमी अठ्ठावन घटिका (58), दशमी छप्पन घटिका (56) एकादशी पचार घटिका (50) होने पर तिथियों का क्षय माना गया है। नवमी चौव्वन (54) दशमी छप्पन (56), एकादशी अठ्ठावन (58) घटिका होने पर वृद्धि मान गया है। एक ही दिन में अरुणोदय काल में दशमी, तदनन्तर एकादशी उसके बाद फिर प्रभातसमय में द्वादशी होनेपर एक ही दिन में तीन तिथिय का संगम होता है। इसको दिनक्षय माना गया है। इन तीनों परिस्थितियों एकादशी के दिन अरुणोदय काल में दशमी का प्रवेश होने के कारण उ एकादशी तिथि को छोडकर द्वादशी के दिनहीं उपवास करना चाहिये।

पूर्वविद्धां प्रकुर्वाणो नरो धर्मान् निकृन्तति।

सन्ततेस्तु विनाशाय संपदो हरणाय च॥ १२६॥

पूर्वविद्धां= दशमीविद्ध एकादशी के दिन प्रकुर्वाणः= उपवास करनेवाल नरः= पुरुष धर्मान् =धर्म को निकृन्तति= नष्ट करता है। इस दिन कि जानेवाला उपवास सन्ततेः तु =अपनों बाल बच्चों का विनाशाय= नाश व

कारण बनेगा, तथा संपदः= स्थिर चर संपत्ति का हरणाय च =नाश के लिये भी कारण बनेगा।

कलोवेधेऽपि विप्रेन्द्र दशम्येकादशीं त्यजेत्।

सुराया बिन्दुना स्पृष्टं गङ्गाम्भ इव संत्यजेत्॥ १२७॥

हे विप्रेन्द्र= हे ब्राह्मण ! दशम्या= दशमी तिथि का कलावेधे तु= एक कला (घटिका का एक भाग) से वेध होने पर भी एकादशी =उस एकादशी तिथि को त्यजेत्=छोडना चाहिये। सुरायाः=मदिरा का बिन्दुना= एक बूंद से स्पष्ट =स्पर्श होने पर गङ्गाम्भः= गङ्गाजी के पानी को इव=जैसे संत्यजेत्=छोडा जाता है उसी प्रकार दशमीविद्ध एकादशी को भी छोडना चाहिये।

श्वदृतौ पञ्चगव्यं च दशम्या दूषितां त्यजेत्।

एकादशीं द्विजश्रेष्ठाः पक्षयोरुभयोरपि।। १२८।।

द्विजश्रेष्ठाः= पण्डितश्रेष्ठों ! श्वदृतौ= कुत्ते की चमडी मे रखा गया पञ्चगव्यं= पंचगव्य को जिस प्रकार से त्यजेत् छोडते है, उसी प्रकार उभयोः अपि शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों मे भी दशम्या= दशमी से दूषितां= विद्ध होने के कारण अपवित्र की गयी एकादशीं= एकादशी तिथि को त्यजेत्= छोडना चाहिये (उस दिन उपवास नहीं करना चाहियें)

तस्माद्विप्रा न विद्धा हि कर्तव्यैकादशी क्वचित्।

विद्धा हन्ति पुरा पुण्यं श्राद्धं च वृषलीपतिः॥ १२९॥

विप्राः= हे ब्राह्मणों ! तस्मात्= पूर्वोक्त कारणों से क्वचित्= कभी भी विद्धा= दशमी से विद्ध एकादशी= एकादशी उपवास को न कर्तव्या= नहीं

करना चाहिये। क्यूं कि जैसे वृषलीपतिः= शूद्र स्त्री से विवाहित ब्राह्म
श्राद्धं= श्राद्ध को हन्ति= नाश करता है वैसे ही विद्धा= दशमी वि
एकादशी तिथि पुरापुण्यं= पूर्व में किया गया पुण्यफल को हन्ति= न
करती है।

जप्तं दत्तं हुतं स्नातं तथा पूजा कृता हरेः।
तत्सर्वं विलयं याति तमः सूर्योदये यथा॥ १३०॥

यथा= जिस प्रकार सूर्योदये= सूर्य भगवान् के उदय होने पर तमः
अन्धकार विलयं याति= नष्ट हो जाता है तथा= उसी प्रकार से दशमीवि
एकादशी उपवास करने पर जप्तं =हमारे द्वारा किया गया जाप दत्तं= दि
गया दान हुतं= होम स्नानं= पुण्यतीर्थों में किया गया स्नान हरेः= भगव
को कृता= की गयी पूजा= अर्चनादि सेवा तत् सर्वं= यह प्रकार का पु
विलयं याति= नष्ट हो जाता है।

विशेषार्थ- 126 से 130 तक श्लोकों मे दशमी विद्ध एकादशी उपवास
निन्दा कर रहे हैं। गङ्गाजल अत्यन्त पवित्र होने पर भी उस में मदिरा का ए
बूंद गिरने पर उस को छोड देते है। देहशुद्धि हेतु दूध दही घी गोमूत्र गोमय
बना या हुआ पञ्चगव्य पिया जाता है। परन्तु कुत्ते की चमडी से बनायी
थैली में पञ्चगव्य डालने पर वह अशुद्ध हो जाता है। उस को छोड दिया जा
है। श्राद्ध में शूद्र स्त्री से विवाहित ब्राह्मण को भोजन करवाने पर श्राद्ध न
होता है। उसी प्रकार एकादशी के दिन अरुणोदय काल में दशमी तिथि हो
पर विद्ध एकादशी होती है। विद्ध= संस्पृष्ट। दशमी तिथि से संस्पृष्ट। उस दि
उपवास करने पर हमारे द्वारा किये गये पूरे ही पुण्य, जो जाप, दान, हो

स्नान, भगशत्पूजन इत्यादि से उत्पन्न हुए हैं, वे नष्ट हो जाते हैं। अतः दशमी विद्ध एकादशी तिथि में उपवास नहीं करना चाहिये।

एकादश्यां यदा ब्रह्मन् दिनक्षयतिथिर्भवेत्।

उपोष्या द्वादशी शुद्धा त्रयोदश्यां तु पारणम्॥ १३१॥

ब्रह्मन्= हे ब्राह्मण ! यदा= जब एकादश्यां= एकादशी के दिन दिनक्षयतिथिः भवेत्= दिनक्षयतिथि आने पर तत्र =वहां द्वादशी= द्वादशी के दिन उपोष्या = उपवास करना चाहिये, तथा त्रयोदश्यां= द्वादशी के अनन्तर त्रयोदशी के दिन पारणं= उपवास समाप्ति का भोजन करना चाहिये।

विशेष- जिस एकादशी के दिन दशमी-एकादशी- द्वादशी इन तीन तिथियों का संयोग होने के कारण दिनक्षय तिथि होती है उस एकादशी दिन उपवास नहीं करना चाहिये। किन्तु द्वादशी के दिन उपवास तथा त्रयोदशी में पारणा करना चाहिये।

प्रतिपत्प्रभृतयः सर्वा उदयादुदयाद्रवेः।

संपूर्णा इति विज्ञेया हरिवासरवर्जिताः॥ १३२॥

प्रतिपत्प्रभृतयः= प्रतिपत् तिथि से लेकर हरिवासरवर्जिताः= एकादशी को छोडकर सर्वाः= सब तिथियां रवेः=सूर्य के उदयात्= पूर्वदिन में उदय से उदयात्= दूसरे दिन उदय तक रहने पर संपूर्णाः= पूर्णतिथि होंगे इति= ऐसा विज्ञेयाः= मानना चाहिये।

विशेष- एकादशी को छोडकर बाकी तिथियां पूर्व दिन सूर्योदय से दूसरे दिन सूर्योदय तक होने पर संपूर्ण तिथि होंगी। परन्तु अरुणोदय काल से होने पर

ही एकादशी को पूर्ण तिथि मानी जाती है। अतः जिस दिन अरुणोदय काल में एकादशी होती है उसी दिन उपवास करना चाहिये।

अरुणोदयवेलायां दशमी यदि दृश्यते।

न तत्रैकादशी कार्या धर्मकामार्थनाशिनी॥ १३३॥

यदि= कभी भी यदाकदाचित् अरुणोदयवेलायां= अरुणोदय काल में दशमी= दशमी तिथि दृश्यते= दिखायी देती है तथा पश्चात् एकादशी तिथि होती है तत्र= उस दिन एकादशी =एकादशी उपवास न कार्या= नहीं करना चाहिये। यदि ऐसी एकादशी उपवास किया जाता है तो वह एकादशी उपवास धर्मकामार्थनाशिनी= धर्म अर्थ और काम रूपी त्रिविधपुरुषार्थों को नाश करता है।

अरुणोदयकाले तु दशमी यदि दृश्यते।

पापमूलं तदा ज्ञेयमेकादश्युपवासनम्।

न तत्रैकादशी कार्या धर्मकामार्थनाशिनी॥ १३४॥

यदि= कभी भी यदा कदाचिते अरुणोदयकाले= अरुणोदय काल में दशमी= दशमी तिथि दृश्यते =दिखायी देती है तदा= उस एकादशी के दिन एकादश्युपवासनं= एकादशी प्रयुक्त उपवास करना पापमूलं= पाप के कारण है ऐसा ज्ञेयम्= समझना चाहिये। इसलिये धर्मकामार्थनाशिनी= धर्म अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों को नाश करनेवाला एकादशी= ऐसे विद्धैकादशी उपवास न कार्या= नहीं करना चाहिये।

चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदय उच्यते।

यतीनां स्नानकालोऽयं गङ्गाम्भःसदृशं जलम्॥ १३५॥

प्रातः= सूर्योदय से पहले चतस्रः= चार घटिकाः =घटिका समय को अरुणोदयः उच्यते= अरुणोदय समय कहा गया है। अयं= यह काल यतीनां= संन्यासियों के स्नानकालः = स्नान के लिये विहित है। यह समय गङ्गाम्भःसदृशः= गङ्गाजी के पानी के समान स्मृतः=कहा गया है।

विशेष- करीब चौबीस मिनट का समय को घटिका कहा गया है। सूर्योदय से पहले चार घटिका (करीब 96 मिनट) का समय अरुणोदय काल कहलाया गया है। यह समय गङ्गाजल जैसे अत्यन्त पवित्र है। संन्यासी लोग इसी वक्त स्नान करते है। जिस एकादशी के दिन अरुणोदय काल में दशमी तिथि होती है उस दिन उपवास करने से धर्म अर्थ और काम यह तीनों पुरुषार्थ नष्ट हो जाते हैं। अतः उस दिन को छोडकर दूसरे दिन द्वादशी में उपवास करना चाहिये।

उदयात्प्राग्यदा विप्रा मुहूर्तद्वयसंयुता।

संपूर्णैकादशी नाम तत्रैवोपवसेद्गृही॥ १३६॥

विप्राः= हे ब्राह्मणों ! यदा=जिस एकादशी के दिन उदयात्= सूर्योदय से प्राक्= पूर्व में मुहूर्तद्वयसंयुता=दो मुहूर्त (चार घटिका) तक एकादशी तिथि होती है उस एकादशी को सपूर्णैकादशी नाम= संपूर्ण एकादशी कही गयी है। गृही= गृहस्थ लोगों को तत्रैव= उस एकादशी तिथि में ही उपवसेत्= उपवास करना चाहिये।

विशेष- दो घटिका समय समय को एक मुहूर्त माना गया है। अतः सूर्योदय से पूर्व में दो मुहूर्त तक (चार घटिका तक) यदि एकादशी तिथि होती है उसी दिन उपवास करना चाहिये। वही पूर्ण एकादशी है।

उदयात्प्राग्त्रिघटिकाव्यापिन्यैकादशी यदा।
संदिग्धैकादशी नाम वर्ज्या धर्मार्थकाङ्क्षिभिः॥१३७॥

यदा= जिस दिन उदयात् प्राक् = सूर्योदय से पहले एकादशी = एकादशीतिथि त्रिघटिकाव्यापिनी= तीन घटिका तक होती है तो वह संदिग्धैकादशी नाम= संदिग्ध एकादशी कही गयी है। धर्मार्थनाशिनी= धर्म और अर्थ के नाश करनेवाली उस एकादशी को वर्ज्या = छोडना चाहिये।

पुत्रपौत्रविवृद्ध्यर्थं द्वादश्यामुपावसयेत्।
तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम्।। १३८।।

संदिग्धैकादशी को छोडकर पुत्रपौत्रविवृद्ध्यर्थं= पुत्रपौत्रादिसन्तति की अभिवृद्धि हेतु द्वादश्यां= उस के दूसरे द्वादशी के दिन उपवासयेत्= उपवास करना चाहिये। तत्र= उस द्वादशी दिन उपवास करने पर क्रतुशतं पुण्यं= एक सौ सोमयागों का पुण्य प्राप्त होता है। तथा त्रयोदश्यां तु= त्रयोदशी दिनहीं पारणं= पारणा (उपवास समाप्ति भोजन) करना चाहिये।

विशेष- सूर्योदय से पूर्व चार घटिका तक एकादशी होने पर ही उपवास करना चाहिये। यदि तीन घटिका पूर्व से ही एकादशी तिथि होती है तो उस को संदिग्धैकादशी कहा गया है। उस दिन भी उपवास नहीं करना चाहिये। किन्तु दूसरे दिन, जो द्वादशी है, में ही उपवास करना चाहिये। तथा त्रयोदशी दिन

उपवास समाप्ति का पारणा करनी चाहिये। ऐसे करने से एक सौ सोमयाग करने का फल प्राप्त होता है तथा पुत्रपौत्रादियों की अभिवृद्धि होती है।

उदयात्प्राग्द्विघटिकाव्यापिन्यैकादशी यदा।
संकीर्णैकादशी नाम वर्ज्या धर्मार्थकाङ्क्षिभिः॥ १३९॥

यदा= जिस दिन उदयात् प्राक्= सूर्योदय से पूर्व में एकादशी= एकादशी तिथि द्विघटिकाव्यापिनी= दो घटिका तक व्याप्त होती है वह संकीर्णैकादशी नाम= संकीर्णैकादशी कही गयी है। धर्मार्थकाङ्क्षिभिः= धर्म और अर्थ की कामना करनेवाले लोग उसे वर्ज्या= छोडना चाहिये।

पुत्रराज्यविवृध्यर्थं द्वादश्यामुपावसनम्।
तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम्।। 140।।

पुत्रराज्यविवद्ध्यर्थं= पुत्रपौत्रादिसन्तति की तथा राज्य इत्यादि की अभिवृद्धि हेतु द्वादश्यां= द्वादशी के दिन उपवासनं=उपवास करना चाहिये। तत्र= ऐसे द्वादशी दिन उपवास करने पर क्रतुशतं पुण्यं= एक सौ सोमयागों के पुण्य प्राप्त होता है। तथा त्रयोदश्यां= त्रयोदशी के दिन पारण=पारणा करनी चाहिये।

दशमीशेषसंयुक्ता गान्धार्या समुपोषिता।
तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां परिवर्जयेत्॥ १४१॥

गान्धार्या= गान्धारी ने दशमीशेषसंयुक्ता= अरुणोदय काल में दशमी के कुछ अशों से संयुक्त एकादशी के दिन समुपोषिता= उपवास किया था। इस

कारण से उनके पुत्रशतं=सौ पुत्र नष्टं= नष्ट हो गये थे। अतः तां=दशमी विद्ध एकादशी को परवर्जयेत्= छोडना चाहिये।

विशेष 139-141. अरुणोदय काल में दशमी तिथि से युक्त एकादशी के दिन गान्धारी ने उपवास किया था। अतः उनके सौ पुत्र युद्ध में मर गये। इस लिये अरुणोदय काल में तीन घटिका तक दशमी से संयुक्त संदिग्धैकादशी तथा दो घटिका तक दशमी से संयुक्त सकीर्णैकादशी के दिन उपवास नहीं करना चाहिये। किन्तु उसके बाद द्वादशी दिन उपवास कर त्रयोदशी के दिन पारणा करना चाहिये। पारणा= उपवास के बाद किये जानेवाला भोजन।

अपीषद्दशमीविद्धा तदा तां परिवर्जयेत्।

सुराबिन्दुसमायुक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः।।१४२।।

एकादशी= तिथि ईषत्= किंचित् भी दशमीविद्धा =दशमी से संयुक्त होने पर तदा= उस दिन तां = उस एकादशी तिथि को परिवर्जयेत्= छोडना चाहिये। क्यूं कि सुराबिन्दुसमायुक्तां= मदिरा के एक बूंद से युक्त अमृत जैसा वह एकादशी त्याज्य है। इस प्रकार मनिषिणः=ज्ञानी लोग प्रवदन्ति =बोलते है।

विशेष- अमृतकलश में एक बूंद मदिरा गिरने पर उस को छोड देते हैं। वैसे ही दशमीतिथि से अत्यन्त अल्पमात्रा में संयुक्त होने पर भी एकादशी को छोडना चाहिये।

बह्वागमविरोधेषु ब्राह्मणेषु विवादिषु।

उपोष्या द्वादशी पुण्या त्रयोदश्यां तु पारणम्।।१४३।।

बह्वागमविरोधेषु= एकादशी तिथि निर्णय करनेवाले गणितशास्त्रों में परस्पर विरोध होने पर तथा ब्राह्मणेषु= संप्रदायप्रवर्तक ब्राह्मणों मे विवादिषु=

विवाद होने पर उस एकादशी को छोडकर पुण्या= पुण्यकर द्वादशी= द्वांदशी के दिन उपोष्या= उपवास करना चाहिये। त्रयोदश्यां तु= त्रयोदशी के दिन पारणं= पारणा करना चाहिये।

विशेष- एकादशी तिथि के निर्णय विविध संप्रदायों में विविध रीतियों से किया जाता है। इन गणितीयसिद्धान्तों में विरोध होने से किसी एकादशी के बारे में विवाद हो सक्ता है। उन शास्त्रों के व्याख्यान करने में संप्रदायज्ञब्राह्मणों मे भी विवदा हो सकता है। ऐसे होने पर उस विवादित एकादशी को छोडकर द्वादशी के दिनहीं उपवास कर त्रयोदशी दिन पारणा करना चाहिये।

एकादश्यां तु विद्धायां संप्राप्ते श्रवणे तथा।
उपोष्या द्वादशी पुण्या पक्षयोरुभयोरपि॥ १४४॥

जिस प्रकार श्रवणे=द्वादशी के दिन श्रवण नक्षत्र संप्राप्ते= होने पर द्वादशी के दिन भी उपवास करते है तथा= उसी प्रकार उभयोः अपि पक्षयोः= शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों में भी एकादश्यां तु= एकादशी दिन विद्धायां= दशमी तिथि से संयुक्त होने पर पुण्या= पुण्यकर द्वादशी =द्वादशी के दिन उपोष्या =उपवास करना चाहिये।

उपरागसहस्राणि व्यतीपातायुतानि च।
अमालक्षं तु द्वादश्याः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ १४५॥

उपरागसहस्राणि= चन्द्र अथवा सूर्य का एक हजार ग्रहण तथा व्यतीपातायुतानि च= दस हजार व्यतीपात योग और अमालक्षं तु= एक

लाख अमावस्या तिथि भी द्वादश्याः=द्वादशी तिथि का षोडशीं कलां= सोलहवे भाग के फल को न अर्हन्ति= प्राप्त नहीं करते हैं।

विशेष- द्वादशी के दिन यद्यपि पारणा ही विहित है। परन्तु कभी कभी वेधरहित शुद्धैकादशी के बाद द्वादशी के श्रवण नक्षत्र से युक्त होने पर उस दिन भी उपवास ही करना चाहिये। पारणा नहीं करना चाहिये। उसी प्रकार एकादशी विद्ध होने पर द्वादशी के दिनहीं उपवास करना चाहिये। क्यूं कि एक हजार ग्रहण, दस हजार व्यतीपात योग, एक लाख अमावास्या तिथि इन सब से ही द्वादशी तिथि अत्यन्त उत्कृष्ट है। द्वादशी दिन किये गये उपवास के जो फल प्राप्त होता है उस का सोलहवें भाग भी हजारों ग्रहण, व्यतीपात, लाखों अमावास्याओं से प्राप्त नहीं होता है।

शुद्धाऽपि द्वादशी ग्राह्या परतो द्वादशी यदि ।

विषं तु दशमी ज्ञेयाऽमृतं चैकादशीतिथिः।

विषप्रधाना वर्ज्या साऽमृता ग्राह्या प्रयत्नतः ॥ १४६ ॥

कभी वेधरहित एकादशी तिथि होने पर भी यदि=किसी भी प्रसङ्ग में परतः=उस एकादशी तिथि के बाद आनेवाली द्वादशी= दूसरी द्वादशी होती है उस प्रसङ्ग में एकादशी दिन जैसे उपवास करते हैं उसी प्रकार शुद्धा द्वादशी अपि ग्राह्या=दोनो द्वादशियों मे पहली द्वादशी के दिन भी उपवास करना चाहिये। क्यूं कि दशमी तु= दशमी तिथि तो विषं ज्ञेया= विष समान मानना चाहिये तथा एकादशीतिथिः च=एकादशी तिथि को तो अमृतं= अमृत मानना चाहिये। विषप्रधाना= विषसे संपृक्त सा= एकादशी तिथि को

वर्ज्या= छोडना चाहिये। प्रयत्नतः= प्रयत्नपूर्वक अमृता= अमृत के तुल्य द्वादशी को ग्रहण करना चाहिये।

विशेष- जिस प्रकार एकादशी उपवास के बाद द्वादशी के दिन श्रावण नक्षत्र होने पर उस द्वादशी दिन में उपवास होता है उसी प्रकार से यदि शुद्ध एकादशी के बाद आयी हुई द्वादशी तिथि के बाद भी तीसरे दिन यदि द्वादशी के कुछ अंश बचते है, तब एकादशी के दिन भी, तथा उसके अगले दिन (प्रथम द्वादशी के दिन) भी उपवास करना चाहिये। उस के बाद के दिन जो द्वितीय द्वादशी दिन है उसी में ही पारणा करना चाहिये।

सर्वथा दशमीसंयुक्त एकादशी को छोडना चाहिये। क्यूं कि दशमी तिथि विषतुल्य है। विषसंपृक्त एकादशी के दिन उपवास नहीं करना चाहिये।

द्वादश्यां भोजनं चैव विद्धायां हर्युपोषणम्।
यः कुर्यान्मन्दबुद्धित्वान्निरयं सोऽधिगच्छति॥ १४७॥

यः= जो पुरुष मन्दबुद्धित्वात्= मूर्ख होने के कारण विद्धायां= दशमी विद्ध एकादशी के दिन हर्युपोषणं =भगवान् के प्रति भक्ति से उपवास तथा द्वादश्यां= द्वादशी के दिन भोजनं च एव= भोजन भी कुर्यात्= करता है सः= वह पुरुष निरयं= नरक को अधिगच्छति= प्राप्त करता है।

विशेष- जो पुरुष विद्धैकादशी के दिन उपवास कर द्वादशी के दिन भोजन करेगा वह मन्दबुद्धि पुरुष नरक में गिरेगा।

यानि कानि च वाक्यानि विद्धोपास्यापराणि तु।
धनदार्चापराणि स्युर्वैष्णवी न दशायुता॥ १४८॥

विद्धोपास्यापराणि= विद्धैकादशी के दिन उपवास को बोधन करनेवाले यानि कानि च =जो कुछ भी वाक्यानि= वाक्य पुराणादियों में मिलते हैं वे वाक्य धनदार्चापराणि स्युः= अन्य देवताओं अर्चनापरक ही होंगे, क्यूं कि दशायुता= दशमी से युक्त एकादशी वैष्णवी न= विष्णु भगवान् के प्रीतिकर नहीं है।

अथवा मोहनार्थाय मोहिन्या भगवान् हरिः।

अर्थितः कारयामास व्यासरूपी जानार्दनः॥ १४९॥

अथवा=अथवा मोहनार्थाय= अयोग्यजनताओं के वञ्चनार्थ मोहिन्या= रुक्माङ्गद राजा की पत्नी मोहिनी से अर्थितः= प्रार्थित व्यासरूपी जनार्दनः = वेदव्यास जी के रूप धारण किये हुऐ भगवान् श्रीकृष्णजी ने ये विद्धोपवासपरकवाक्यों को कारयामास= बनवाया है। ।

धनदार्चाविवृद्ध्यर्थं महावित्तलयस्य च।

असुराणां मोहनार्थं पाषण्डानां विवृद्धये।

आत्मस्वरूपाविज्ञप्त्यै स्वलोकाप्राप्तये तथा॥ १५०॥

धनदार्चाविवृद्ध्यर्थं= अन्य देवताओं की उपासना को बढावा देने हेतु महावित्तलयस्य च= वास्तविक रूपमें बडी मात्रा में धननाश के लिये ही और असुराणां= राक्षसों को मोहनार्थं= मोहित करने हेतु तथा पाखण्डानां विवृद्धये= पाशुपत इत्यादि पाखण्डों को ज्यादा करने हेतु तथा आत्मस्वरूपाविज्ञप्त्यै= अपने निजस्वरूप को आवृत करने हेतु तथा स्वलोकाप्राप्तये= अपने निजलोक वैकुण्ठ के मार्ग से असुरों को च्युत करने

हेतु व्यासरूपी भगवान् ने ही विद्धोपवास परकवाक्यों को बनवा कर यत्र तत्र प्रचलित करवाया है।

विशेष 148-150. रुक्माङ्गद राजा ने सब प्रजाओं को एकादशी उपवास की शिक्षा दिया था। उस से अयोग्य असुर-राक्षस इत्यादि भी भगवद्भक्तिमार्ग में आगये थे। रुक्माङ्गद राजा की पत्नी मोहिनी इस से चिन्तित होकर व्यासजी से प्रार्थना की कि हे प्रभो ! दुष्ट लोगों को सन्मार्ग से भ्रष्ट करें। मोहिनी से प्रार्थित व्यासजी ने विद्धैकादशी उपवास परक वाक्यों को सर्वत्र प्रचलित किया ताकि दुष्ट लोग विद्धैकादशी उपवास कर दुर्गति प्राप्त करलें।

ऐसे कई वाक्यों में यह बताया गया है कि विद्धैकादशी उपवास करने से कुबेर इत्यादि देवताएं प्रसन्न हो जायेंगे। तथा उपवासी लोगों को बहुत धन की प्राप्ति होगी। अतः धनेच्छुक लोग विद्धैकादशी उपवास करने लग गये हैं। परन्तु वस्तुतः विद्धैकादशी उपवास करने से धनक्षय ही होता है।

विद्धैकादशी उपवास करने से विष्णुलोक प्राप्ति मार्ग से लोग भ्रष्ट होते हैं तथा कदापि भगवान् के स्वरूप को जान नहीं पायेंगे। अतः केवल पाशुपत इत्यादि पाखण्डी लोग ही विद्धैकादशी उपवास करते हैं। परन्तु विद्धैकादशी से कदाचित् भी विष्णु भगवान् की प्राप्ति नहीं होगी किन्तु कोप ही होगा। अतः विद्धैकादशी उपवास को करना नहीं चाहिये।

एवं विद्धां परित्यज्य द्वादश्यामुपावासनात्।
कोटिजन्मार्जितं पापमेकयैव विनश्यति॥ १५१ ॥
ततः कोटिगुणं वाऽपि निषिद्धस्यैतरैर्जनैः।

एवं= इस प्रकार विद्धां= विद्धैकादशी को परित्यज्य= छोडकर द्वादश्यां= द्वादशी के दिन उपवासनात्= उपवास करने से कोटिजन्मार्जितं पापं= एककोटि जन्मों से अर्जित किया गया पापं= पापफल एकया एव= एक ही द्वादशी से विनश्यति= नष्ट हो जाता है। इतरैः= विद्धैकादशी के दिन उपवास करने वाले अलग जनैः = लोगों से निषिद्धस्य= 'शुद्ध द्वादशी दिन उपवास नहीं करना चाहिये' इस प्रकार निवारित होने पर भी जो पुरुष विद्धैकादशी को छोडकर द्वादशी के दिन उपवास करता है उस को ततः= कोटिजन्मों में अर्जित पाप से भी कोटिगुणं वा अपि= और कोटिगुण ज्यादा होने पर भी वह पाप नष्ट हो जाता है।

विशेष- दूसरे लोगों के द्वारा निवारित होने पर भी जिस पुरुष ने विद्धैकादशी को छोडकर द्वादशी के दिन उपवास किया है उस का कोटिजन्मों में संचित किया गया पाप या उस से और कोटिगुण ज्यादा पाप भी तत्क्षण नष्ट हो जाता है।

यदनादिकृतं पापं यदूर्ध्वं यत्करिष्यति।।152 ।।
तत्सर्वं विलयं याति परेषामुपवासनात्।
न च तस्मात्प्रियतमः केशवस्य ममापि वा।। 153 ।।

यत्= जो अनादिकृतं पापं= अनादिकाल से किया गया पाप है तत्= वह पाप और ऊर्ध्वं =अगले जन्मों में यत्= जिस पाप को करिष्यति =करता है तत् सर्वं= वह सब पाप परेषाम् उपवासनात्= दूसरे लोगों से उपवास करवाने से विलयं याति= नष्ट हो जाता है। केशवस्य= विष्णु भगवान् को मम अपि

वा= मुझे (शंकर भगवान् को भी) तस्मात्= उक्त पुरुष से प्रियतमः= प्रिय पुरुष कोई न च = नहीं है।

विशेष- केवल स्वयं विद्धैकादशी छोडना ही नहीं, बलकि अपने शिष्य-छात्र -बन्धु इत्यादि को भी उपदेश देकर विद्धैकादशी छुडवाकर द्वादशी के दिन उपवास करवाना अत्यन्त आवश्यक है। इस से पूर्वजन्मों में किया गया पाप तथा उत्तर जन्मों से किया जानेवाला पाप भी नष्ट हो जाता है। ऐसे उपदेष्टा पुरुष ही विष्णुजी तथा शंकरजी का अत्यन्त प्रिय होगा। उस से प्रिय कोई नहीं बनेगा।

एकादश्यां ह्यवेधे तु द्वादशीं न परित्यजेत्।
पारणे मरणे चैव तिथिस्तात्कालिकी स्मृता॥ १५४॥

एकादश्यां हि= एकादशी के दिन अवेधे तु= दशमी वेध न होने पर तो द्वादशीं= द्वादशी को न परित्यजेत्= छोडना नहीं चाहिये। क्यूं कि पारणे= व्रतसमाप्ति भोजन में तथा मरणे= मरण काल में तात्कालिकी=उसी समय में रहनेवाली तिथि को ही स्मृता= ग्रहण करना चाहिये। यह स्मृतियों में कहा गया है।

विशेष- कुछ पुराणों में कहा गया है कि द्वादशी तिथि के दिन उपवास न करते हुए पारणा ही करनी चाहिये। उन पुराणों का अभिप्राय यह है कि एकादशी के दिन दशमी वेध न होने पर द्वादशी पारणा को छोडना नहीं चाहिये। अतः विद्धैकादशी को छोडने पर उन पुराणों का विरोध नहीं है।

हमेशा मरण काल में जैसा तात्कालिक तिथि को देखा जाता है न तु सूर्योदयव्यापिनी तिथि को, वैसे ही पारणा काल में तात्कालिक तिथि को ही देखते हुए पारण करना चाहियें।

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतिस्तथा।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो भर्तृमती तथा॥ १५५॥

अभर्तृका तथाऽन्ये च सूतवैदेहिकादिकादयः।

एकादश्यां न भुंञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥ १५६॥

ब्रह्मचारी= ब्रह्मचारी गृहस्थो वा= ग्रहस्थ भी हो वानप्रस्थः= अरण्य में निवास करनेवाले वानप्रस्थाश्रमी हो तथा= उसी प्रकार यतिः= संन्यासी इस प्रकार चारों आश्रमी लोग तथा ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रः =ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों के लोग तथा भर्तृमती= सुवासिनी स्त्री तथा= और अभर्तृका=विधवा स्त्री भी अन्ये= इतरे सूतवैदेहिकादयः= वर्णबाह्य सूत वैदेहिक इत्यादि लोगों को भी उभयोः अपि पक्षयोः= शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों में भी एकादश्यां= एकादशी के दिन न भुञ्जीत= भोजन नहीं करना चाहिये।

विशेष- चारों वर्णों के तथा चारों आश्रमों के लोगों, तथा वर्णबाह्य क्षत्रिय से ब्राह्मण स्त्री में उत्पन्न सूत, वैश्य से ब्राह्मण स्त्री में उत्पन्न वैदेहिक, शूद्र से ब्राह्मण स्त्री में उत्पन्न चण्डाल इत्यादि लोगों को भी दोनो पक्षों एकादशी उपवास करना चाहिये। 'शुक्लपक्ष एकादशी को ही एकादशी उपवास करना चाहिये' यह कुछ लोगों का मत है। परन्तु यह अभिप्राय गलत है। शंकरजी के इस वचन के अनुसार दोनों भी पक्षों मे उपवास करना अनिवार्य है।

एकादश्यां तु यो भुङ्क्ते मोहेनावृतचेतसा।

शुक्लायामथ कृष्णायां निरयं याति स ध्रुवम्॥ १५७॥

शुक्लायां= शुक्लैपक्षैकादशी के दिन अथवा कृष्णायां एकादश्यां= कृष्णपक्षैकादशी के दिन मोहेन आवृतचेतसा= मिथ्याज्ञान से ग्रसित मन से यः= जो पुरुष भुङ्क्ते = भोजन करता है सः= वह पुरुष ध्रुवं= निश्चितरूप से निरयं= नरक को याति= प्राप्त करता है।

विशेष- दोनों पक्षों का भी एकादशी तिथियों में यदि कोई भोजन करता है तो निश्चितरूप से नरक में गिरता है। अतः शुक्ल कृष्ण भेद न करते हुए दोनों एकादशियों में उपवास करना चाहिये।

विवेचयति यो मोहाच्छुक्ला कृष्णेति पापकृत्।

एकादशीं स वै याति निरयं नात्र संशयः॥ १५८॥

यः पापकृत्= जो पापी पुरुष मोहात्=अज्ञान से एकादशीं= एकादशी को शुक्ला कृष्णा इति= 'यह शुक्ला एकादशी है' 'यह कृष्ण एकादशी है' इस प्रकार से विवेचयति =भेद करता है सः= वह पुरुष वै= निश्चितरूप से निरयं याति= नरक को प्राप्त करता है। अत्र= इस विषय में न संशयः= कोई संशय नहीं है।

यथा गौर्नैव हन्तव्या शुक्ला कृष्णेति भामिनि।

एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि॥ १५९॥

हे भामिनि= हे पार्वती देवी! यथा = जिस प्रकार शुक्ला गौः= सफेद गाय को न हन्तव्या= मारना नहीं चाहिये उसी प्रकार कृष्णा गौः= काली गाय

को भी न हन्तव्या= मारना नहीं चाहिये। उसी प्रकार शुक्ल-कृष्ण भेद न करते हुए उभयोः अपि पक्षयोः= दोनों भी पक्षों में एकादश्यां= एकादशी के दिन न भुञ्जीत= भोजन नहीं करना चाहिये।

शंकरः-

यानि कानि च वाक्यानि कृष्णैकादशिवर्जने।

भरण्यादिनिषेधे च तानि काम्यफलार्थिनाम्।।१६०।।

कृष्णैकादशिवर्जने= कृष्ण एकादशी उपवासनिषेधपरक तथा भरण्यादि-निषेधे= भरणी नक्षत्र युक्त एकादशी निषेधपरक यानि कानि च वाक्यानि= जो कुछ भी वाक्य उपलब्ध है तानि= वे वाक्य काम्यकलार्थिनाम्= किसी काम्य फल को उद्देश्य कर उपवास करनेवाले लोगों के लिये है।

विशेष- 158-160. गोमाता अत्यन्त पूजनीय है। सफेद गाय कालीगाय इस प्रकार से गोमाता में भेद नहीं किया जाता है। वैसे ही कृष्णैकादशी शुक्लैकादशी इन दोनों में भेद करना उचित नहीं है। ऐसे भेद करनेवाला नरक में गिरता है। अतः दोनों एकादशी दिनों में उपवास अवश्य करना चाहिये।

कुछ लोग किसी फल की कामना करते हुए एकादशी उपवास करते हैं। 'गृहस्थ लोगों को कृष्णा एकादशी में उपवास नहीं करना चाहिये' इस प्रकार के जो कृष्णैकादशी तथा भरणीयुक्त एकादशी में उपवास निषेधपरक वाक्य मिलते हैं वे सारे वाक्य केवल काम्यफलार्थी पुरुषों के लिये ही है। जो लोग किसी भी फल की कामना के बिना केवल विष्णुप्रीत्यर्थ उपवास करते हैं इन लोगों को कृष्ण-शुक्ल भेद नहीं है।

कामिनोऽपि हि नित्यार्थं कुर्युरेवोपवासनम्॥

प्रीणनाय हरेर्नित्यं न तु कामव्यपेक्षया॥ 161॥

कामिनः अपि = किसी कामना से उपवास करनेवाले लोग भी नित्यार्थं= कृष्ण एकादशी में उपवास न करने से संभावित पाप परिहार हेतु तथा नित्यं= प्रतिदिन हरेः= भगवान् की प्रीणनार्थं= प्रीति हेतु ही उपवासनं कुर्युः = उपवास करें, न तु कामव्यपेक्षया= किसी कामना की अपेक्षा से उपवास नहीं करना चाहिये।

तस्माच्छुक्लामथो कृष्णां भरण्यादियुतामपि॥
प्रत्यवायनिषेधार्थमुपवासीत नित्यशः।। 162।।

तस्मात्=पूर्वोक्त कारणों से=प्रत्यवायनिषेधार्थं= पापपरिहारार्थ शुक्लां= शुक्लैकादशी को कृष्णां= कृष्णैकादशी को भरण्यादियुतामपि= भरणी नक्षत्र से युक्त एकादशी के दिन भी नित्यशः= अनिवार्यतया उपवासीत=उपवास करना चाहिये।

विशेष- जो लोग किसी कामना को उद्दिष्ट कर एकादशी उपवास करते हैं उन लोगों को भी दोनो एकादशियों में उपवास करना चाहिये क्यूं कि कृष्णैकादशी में उपवास न करने पर पाप संचित होता है। इस पाप का परिहारार्थ विष्णुभगवान् के प्रीत्यर्थ दोनों एकादशियों में उपवास करना चाहिये।

कला वा घटिका वाऽपि परतो द्वादशी यदि॥
द्वादशद्वादशीर्हन्ति पूर्वेद्युः पारणे कृते॥ 163॥

यदि= किसी भी प्रसङ्ग में परतः=द्वादशी के अगले दिन भी कला वा=एक कला तक घटिका वा अपि= एक घटिका तक भी द्वादशी= द्वादशी तिथि

अवशिष्ट होती है उस प्रसङ्ग में पूर्वेद्युः= प्रथम द्वादशी के दिन पारणे कृते= पारण करने पर द्वादशद्वादशीः = बारह द्वादशियों के पारणाफल को हन्ति= नष्ट करता है।

अतिरिक्ता द्वादशी चेद्यस्तां नोपोषयेद्यदि॥

द्वादश द्वादशीर्हन्ति द्वादशी चातिलङ्घिता॥164॥

यदि= किसी प्रसङ्ग में एक द्वादशी के बाद अतिरिक्ता द्वादशी चेत्=और एक द्वादशी होने पर यः=जो पुरुष तां= उस प्रथम द्वादशी के दिन न उपोषयेत्= उपवास नहीं करता है तो अतिलङ्घिता= छोडी गयी द्वादशी= वह प्रथम द्वादशी द्वादश द्वादशीः= बारह द्वादशी पारणा फल को हन्ति= नष्ट करती है।

द्वादश्यामतिरिक्तायां यो भुङ्क्ते पूर्ववासरे॥

द्वादश द्वादशीर्हन्ति द्वादशीं न परित्यजेत्।। 165।।

एक द्वादशी के बाद अतिरिक्तायां= एक और द्वादश्यां= द्वादशी होने पर यः= जो पुरुष पूर्ववासरे= प्रथम द्वादशी के दिन भुङ्क्ते= भोजन करता है तो द्वादश द्वादशीः हन्ति= बारह द्वादशियों के पारणा फल को नष्ट करता है। अतः द्वादशीं= उस प्रथम द्वादशी उपवास को न परित्यजेत्= छोडना नहीं चाहिये।

विशेष- 163-165. कदाचित् शुद्धैकादशी के बाद जो द्वादशी दिन है उसके अनन्तर दिन में (त्रयोदशी के दिन में) भी यदि एक कला (एक घटिका का 1/60 भाग) या एक घटिका तक द्वादशी तिथि होती है तब एकादशी दिन उपवास के बाद प्रथम द्वादशी के दिन भी उपवास करना चाहिये। इन दोनों

द्वादशी तिथियों में प्रथम द्वादशी को अतिरिक्तैकादशी कहलाया गया है। प्रथम द्वादशी के दिन उपवास न करने पर बारह द्वादशियों में पारणा करने का पुण्यफल नष्ट हो जाता है। अतः अतिरिक्तैकादशी के दिन भी उपवास करना चाहिये।

द्वादशीं श्रवणोपेतां यो नोपोष्यात् सुमन्दधीः।

पञ्चसंवत्सरकृतं पुण्यं तस्य विनश्यति॥166॥

श्रवणोपेतां= श्रवणनक्षत्र से युक्त द्वादशी= द्वादशी दिन को यः= जो पुरुष न उपोष्यात्= उपवास नहीं करता है सः= वह पुरुष मूढधीः= मूर्ख है। तस्य= उस पुरुष का पञ्चसंवत्सरकृतं पुण्यं= पांच सालों में संचित किया गया पुण्य विनश्यति = नष्ट हो जाता है।

एकादशीमुपोष्याथ द्वादशीमप्युपोषयेत्।

न तत्र विधिलोपः स्यादुभयोर्देवता हरिः॥167॥

द्वादशी के दिन श्रवण नक्षत्र होने पर एकादशीम् उपोष्य= एकादशी के दिन उपवास कर अथ=अनन्तर द्वादशीम् अपि= श्रवणनक्षत्रयुक्त द्वादशी के दिन भी उपोषयेत्= उपवास करना चाहिये। तत्र= इस प्रकार श्रवणद्वादशी उपवास करने पर विधिलोपः= द्वादशीपारणा विधि का लोप न स्यात्= नहीं होगा। क्यूं कि उभयोः= एकादशी तथा श्रवणनक्षत्रयुक्तद्वादशी इन दोनों का हरिः= विष्णुभगवान् ही देवता= अभिमानी देवता है।

विशेष- अतिरिक्तैकादशी व्रत जैसे पुण्यकर है उस से भी ज्यादा पुण्यकर श्रवणद्वादशी उपवास है। एकादशी के बाद द्वादशी दिन श्रवणनक्षत्र होने पर उस को श्रवणद्वादशी कहते हैं। श्रवण नक्षत्र विष्णु भगवान् के नक्षत्र होने के

कारण श्रवणद्वादशी उपवास विष्णु को अतीव प्रीतिकर है। उस दिन उपवास न करने पर पूरे पांच साल में अर्जित किया गया पुण्य नष्ट हो जाता है। श्रवण नक्षत्र युक्त द्वादशी के दिन उपवास करने पर भी कोई दोष नहीं होता है।

अल्पायामपि विप्रेन्द्र पारणं तु कथं भवेत्।

पारयित्वोदकेनापि भुञ्जानो नैव दुष्यति॥ 168॥

अशिताऽनशिता यस्मादापो विद्वद्भिरीरिताः।

अम्भसा केवलेनैव करिष्ये व्रतपारणम्।

तद्वरिष्ठं मुनिप्रोक्तम् अशितानशितं च यत्।। 169।।

प्रश्न- विप्रेन्द्र= हे मुनिश्रेष्ठ! अल्पायां अपि= द्वादशी तिथि अत्यन्त कम होने पर उतनी कम समय में पारणं तु= पारणा तो कथं भवेत्= कैसे हो सकता है ?

उत्तर- उदकेनापि= पानी से भी पारयित्वा= पारणा कर भुञ्जानः=उस के बाद भोजन करनेवाले पुरुष को नैव दुष्यति= कोई दोष नहीं होता है। क्यूं कि आपः=पानी अशितानशिताः=भक्षित अथवा अभक्षित ऐसे विद्वद्भिः= विद्वानों के द्वारा कथिताः= कहा गया है। "इसलिये केवलेन अम्भसा= केवल पानी से ही व्रतपारणं= एकादशी व्रत की पारणा को करिष्ये= करूंगा" इस प्रकार मुनिप्रोक्तं= अम्बरीष मुनि के द्वारा बताया गया यत्=जो अशितानशितं= भक्षित अथवा अभक्षित पानी है तत्= वह वरिष्ठं= अत्यन्त श्रेष्ठ है।

विशेष-168=169. कदाचित् अम्बरीष राजा एकादशी उपवास कर द्वादशी पारणा हेतु सन्नद्ध हो रहे थे। उसी समय दुर्वासा ऋषि स्नान किये बिना वहां

पधार गये। तदा अम्बरीष जी उभयसंकट में पड गयें। अकेले स्वयं पारणा करने पर ऋषिजी का कोप का पात्र हो जाते हैं। पारणा न करने पर पारणाभङ्ग दोष होता है, क्यूं कि उस दिन द्वादशी तिथि अत्यन्त अल्प काल तक ही थी। इस उभयसंकट से बचने के लिये अम्बरीस जी ने एक उपाय सोच लिया कि केवल पानी से पारणा किया जाए ताकि पारणाभङ्ग न होगा। पानी को पीने पर भी न पीने का बराबर ही है। अतः ऋषिकोप से भी बच सकते है। इस उपाय से अम्बरीष जी उभयसंकट से बच गये थे। यह कथा भागवत में प्रसिद्ध है। अतः अल्पद्वादशी होने पर केवल पानी से भी पारणा की जा सकती है।

संप्रति एकादशी की महत्ता को वर्णना कर रहे हैं।

न काशी न गया गङ्गा न रेवा न च गौतमी।
न चापि कौरवं क्षेत्रं तुल्यं भूप हरेर्दिनात्॥ 170॥

भूप= हे राजन्! हरेः दिनात्= एकादशी दिन से न काशी, न गया, न गङ्गा, न रेवा, न च पुष्करं, न चापि कौरवं क्षेत्रं तुल्यं = काशी गया गङ्गा नर्मदा पुष्करक्षेत्र कुरुक्षेत्र इस में कोई समान नहीं हैं।

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ 171॥

अश्वमेधसहस्राणि= एक हजार अश्वमेध याग वाजपेयशतानि च = सैकडों वाजपेय याग भी एकादश्युपवासस्य=एकादशी उपवास का षोडशीं कलां= सोलहवे भाग की योग्यता को भी न अर्हन्ति = प्राप्त नहीं करतें हैं।

एकादशीसमुत्थेन वह्निना पातकेन्धनम्।

भस्मीभवति राजेन्द्र अपि ज़न्मशतोद्भवम्॥ 172॥

राजेन्द्र= हे राजन्! एकादशीसमुत्थेन = एकादशी उपवास से उत्पन्न वह्निना= पुण्याग्नि से जन्मशतोद्भवम् = एक सौ जन्मों में किया गया पातकेन्धनम् अपि= पापरूपी इन्धन भी भस्मीभवति =भस्म हो जाता है।

विशेष- 170-172. काशी गया प्रयाग नर्मदा पुष्कर कुरुक्षेत्र इत्यादि जो भी पुण्यतम तीर्थ क्षेत्र है वे सब मिलकर भी एकादशी उपवास का समान नहीं हैं। एकादशी उपवास हजारों अश्वमेधों सैकडों वाजपेयों से भी बहुत गुणा अधिक उत्कृष्ट हैं। सैकडों जन्मों में किया गया पाप एकादशी उपवास से भस्म हो जाता है।

नेदृशं पावनं किंचिन्नराणां भुवि विद्यते।

यादृशं पद्मनाभस्य दिनं पातकहानिदम्॥ 173॥

पद्मनाभस्य= भगवान् आदिनारायण जी का दिनं= एकादशी दिन यादृशं =जितना पातकहानिदं= पापपरिहारक है ईदृशं= इतना नराणां= मनुष्यों के लिये पावनं= पवित्र वस्तु किंचित्= जो कुछ भी भुवि= इस धरती में न विद्यते= नहीं है।

तावत्पापानि देहेऽस्मिन् तिष्ठन्ति मनुजाधिप।

यावन्नोपोषयेज्जन्तुः पद्मनाभदिनं शुभम्॥ 174॥

मनुजधिप= हे राजन्! जन्तुः= मनुष्य यावत्= जब तक शुभं पद्मनाभदिनं= अत्यन्त पावन एकादशी के दिन न उपोषयेत्=उपवास नहीं

करता है तावत्= तब तक अस्मिन् देहे= इस देह में पापानि= पाप तिष्ठन्ति= रहते हैं।

एकादशेन्द्रियैः पापं यत्कृतं भवति प्रभो।

एकादश्युपवासेन तत्सर्वं विलयं व्रजेत्॥ 175॥

प्रभो= हे राजन् ! एकादशेन्द्रियैः= ग्यारह इन्द्रियों से यत् पापं= जो पाप कृतं भवति= किया हुआ रहता है तत् सर्वं= वह सब पाप एकादश्युपवासेन= एकादशी उपवास से विलयं व्रजेत् =नष्ट हो जाता है।

एकादशीसमं किंचित्पवित्रं न हि विद्यते।

व्याजेनापि कृता राजन्न दर्शयति भास्करिम्।। 176।।

राजन्= हे राजन् ! एकादशीसमं= एकादशी के समान पवित्रं= पवित्र वस्तु किंचित्= कुछ भी न हि विद्यते= नहीं है। व्याजेन अपि= किसी बहाने से कृता= एकादशी उपवास करने पर भास्करिं= भास्कर पुत्र यमधर्मराज का न दर्शयति= दर्शन नहीं करवाती है।

विशेष- 173-176. एकादशी उपवास के समान वस्तु इस भूमि में कुछ भी नहीं है। आंख-नासिका-कान-त्वगिन्द्रिय-रसनेन्द्रिय रूपी पञ्चज्ञानेन्द्रिय तथा वागिन्द्रिय-हस्त-पाद-पायु-उपस्थ रूपी पञ्च कर्मेन्द्रिय तथा मनोरूपी अन्तरिन्द्रिय कुल मिलकर ग्यारह इन्द्रियों के द्वारा किया गया पाप एकादशी उपवास से नष्ट होता है। इन पापों का नाश एकादशी उपवास के बिना अन्य दूसरे कारणों से नहीं हो सकता है। किसी दूसरे बहाने से एकादशी उपवास शास्त्रानुसार करने पर भी मरणानन्तर यमदर्शन नहीं होगा। साक्षात् विष्णुलोकप्राप्ति ही होगी।

व्यासः-

स ब्रह्महा स गोघ्नश्च स स्तेनो गुरुतल्पगः।

एकादश्यां तु भुञ्जानः पक्षयोरुभयोरपि।। 177।।

उभयोः पक्षयोः अपि = शुक्ल कृष्ण दोनों पक्षों में भी एकादश्यां= एकादशी के दिन भुञ्जानः= भोजन करनेवाला जो पुरुष है सः= वह पुरुष ब्रह्महा= ब्राह्मण वध करनेवाला है, सः गोघ्नः=वह गोहत्या करनेवाला है, सः स्तेनः = वह चोर है, सः गुरुतल्पगः= वह गुरुपत्नी का भोग करनेवाला है।

वरं स्वमातृगमनं वरं गोमांसभक्षणम्।

वरं हत्या सुरापानमेकादश्यन्नभोजनात्।। 178।।

एकादश्यन्नभोजनात्=एकादशी के दिन अन्न खाने से स्वमातृगमनं= अपनी माता से भोग करना वरं= श्रेष्ठ है, गोमांसभक्षणं= गाय का मांस खाना वरं= श्रेष्ठ है, हत्या= लोगों को मारना वरं= श्रेष्ठ है, सुरापानं= मदिरा पीना वरं= श्रेष्ठ है।

एकादशीदिने प्राप्ते भुञ्जते ये नराधमाः।

अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवलोकयेत्।। 179।।

ये नराधमाः= जो हीन पुरुष पुण्ये= अत्यन्त पवित्र एकादशीदिने= एकादशी के दिन में भुञ्जते= भोजन करते हैं तेषां= उन लोगों का मुखं= मुख को अवलोक्य= देखकर आदित्यं= सूर्य को अवलोकयेत्= देखना चाहिये।

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।

अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति संप्राप्ते हरिवासरे।। 180।।

पृथिव्यां= धरती में ब्रह्महत्यादिकानि= ब्राह्मणों को मारना इत्यादि यानि पापानि= जो पाप परिगणित हैं वे सब पाप हरिवासरे संप्राप्ते= एकादशी दिन आते ही अन्नं आश्रित्य= अन्न में आश्रित होकर तिष्ठन्ति= रहते हैं।

विशेष-177-180. इस धरतीपर जितने भी पापों की परिगणना की गयी है वे सभी पाप एकादशी के दिन अन्न में ही रहते हैं। अतः एकादशी के दिन भोजन करनेवाला ब्रह्महत्यापाप, गोहननपाप, चौर्य का पाप, अपने गुरूजी की पत्नी के साथ भोग करने का पाप ये सभी पापों को प्राप्त करता है। इतना ही नहीं किन्तु उस से भी ज्यादा पाप प्राप्त करता है। ब्राह्मणों को मारना, अपनी माता से संभोग करना, अथवा गोमांस को खाना, मदिरा पीना, चुराना इत्यादि दुष्कार्यो से जो पाप होता है वह पाप एकादशी के दिन खाने से होनेवाला पाप से कम ही है। एकादशी के दिन भोजन करनेवाले लोगों के मुख देख कर प्रायश्चित्त हेतु सूर्य को देखना चाहिये।

रुक्माङ्गदः-

अष्टवर्षाधिको यस्तु यस्याशीतिर्न पूर्यते।
यो भुङ्क्ते मानवः पापो विष्णोरहनि चागते।। 181।।

यः तु= जो भी पुरुष अष्टवर्षाधिकः= आठ से अधिक साल का है, तथा यस्य= जो पुरुष अशीतिः न पूर्यते= अस्सी से कम साल का है, ऐसा यः मानवः= जो पुरुष विष्णोः अहनि आगते= परमात्मा के दिन एकादशी प्राप्त होने पर भुङ्क्ते =भोजन करता है वह पुरुष पापः= पापी है।

पिता वा यदि वा पुत्रो भार्या वापि सुहृज्जनः।
पद्मनाभदिने भुङ्क्ते निग्राह्यो दस्युवद्भवेत्॥ 182॥

पिता वा= पिताजी भी हो, यदि वा= अथवा पुत्रः=पुत्र हो, अथवा भाय =पत्नी हो, सुहृज्जनः अपि वा= सखा भी हो, परन्तु पद्मनाभदिने= परमात्मा के दिन एकादशी को भुङ्क्ते= भोजन करता है वह दस्युवत्= चो जैसे निग्राह्यः भवेत्= दण्डनीय होता है।

विशेष- 181-182. रुक्माङ्गद राजा के शासनकाल में यह आदेश प्रसारि हुआ था कि जो पुरुष एकादशी को भोजन करता है, चाहे वह पिता, माता पुत्र, भार्या, अथवा बन्धु, सखा हो, उसको चोरों की तरह दण्डना होगी एकादशी उपवास न करने पर वह पापी है। परन्तु आठ साल के नीचे के जं बालक हैं, तथा अस्सी साल से ज्यादा उम्र के जो वृद्ध हैं इन दोनों को य उपवास नियम लागू नहीं है। बाल वृद्ध रोगी इत्यादि लोग फलाहार ले सक हैं।

ब्रह्मा-

उपोष्य द्वादशीं पुण्यां सर्वपापक्षयप्रदाम्।

न पश्यति यमं वाऽपि नरकाणि न यातनाम्॥ 183॥

एकादशी दशमी से संयुक्त होने पर अथवा अतिरिक्तद्वादशी या श्रवणद्वादश आने पर उस पुण्यां= पवित्र सर्वपापक्षयप्रदां=सभी पापों को नाश कर वाली द्वादशीं= द्वादशी के दिन उपोष्य= उपवास करने से यमं= यमधर्मरा को, नरकाणि वा अपि= नरकों को, यातनां = नरक यातना को भी पश्यति = नहीं देखता है।

विशेष- विद्धैकादशी को छोडकर अगली द्वादशी के दिन उपवास करने से कभी भी नरक दर्शन नहीं होगा, न वा यमराज का, नापि नरकयातना का ।

शंकरः-

रटन्तीह पुराणानि भूयो भूयो वरानने।

न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं संप्राप्ते हरिवासरे॥ 184॥

वरानने =हे पार्वतीदेवी! 'हरिवासरे संप्राप्ते= एकादशी के दिन प्राप्त होने पर न भोक्तव्यं = भोजन नहीं करना चाहिए, न भोक्तव्यं =भोजन नहीं करना चाहिए' इस प्रकार पुराणानि =बहुत पुराण वाक्य इह= एकादशी के विषय में रटन्ति = बोल रहे हैं।

ब्रह्मा-

द्वादशी न प्रमोक्तव्या यावदायुः प्रवर्तते।

अर्चनीयो हृषीकेशो विशुद्धेनान्तरात्मना॥ 185॥

यावत्= जब तक आयुः= हमारा जीवन प्रवर्तते = चलता रहता है तब तक द्वादशी = एकादशी उपवास तथा द्वादशी पारणा को न प्रमोक्तव्या= छोडना नहीं चाहिए। विशुद्धेन अन्तरात्मना= विशुद्ध मन से हृषीकेशः= नारायण जी को अर्चनीयः= अर्चना करना चाहिए ।

विशेष 184-185. जब तक शरीर में प्राण वायु प्रवाहित होता रहता है तब तक एकादशी व्रत को छोडना नहीं चाहिए। 'एकादशी के दिन भोजन नहीं करना चाहिये' 'एकादशी के दिन भोजन नहीं करना चाहिये' इस प्रकार से सारे ही पुराण वाक्य एकादशी उपवासकी आवश्यकता को प्रतिपादित कर रहे हैं।

अब तक एकादशी के बारे में विस्तृत रूप में कहा गया है। इस के बाद भगवत्स्मरण का महत्त्व प्रतिपादित कर रहे हैं-

भक्त्या ग्राह्यो हृषीकेशो न धनैर्धरणीसुराः।

भक्त्या संपूजितो विष्णुः फलं धत्ते समीहितम्॥ 186॥

धरणीसुराः=हे ब्राह्मणों! हृषीकेशः= विष्णु भगवान् को भक्त्या ग्राह्यः= भक्ति से पूजन करना चाहिए। धनैः= पैसे से न ग्राह्यः= पूजन नहीं करना चाहिए। भक्त्या= भक्तिपूर्वक संपूजितः = पूजित किए गए विष्णुः= विष्णु भगवान् समीहितं फलं = अपेक्षित फल को धत्ते= देते हैं।

जलेनापि जगन्नाथः पूजितः क्लेशनाशनः।

परितोषं प्रयात्याशु तृषार्तस्तु यथा जलैः॥ 187॥

क्लेशनाशनः= कष्टों को नाश करने वाले जगन्नाथः= जगत्प्रभु नारायण जलेन अपि = भक्ति पूर्वक केवल पानी से भी पूजितः= पूजित होते हुए आशु = शीघ्र ही परितोषं प्रयाति= संतुष्ट होते हैं। यथा= जैसा तृषार्तः= प्यासी पुरुष जलैः= पानी से संतुष्ट होता है वैसे ही भगवान् भी केवल जल से सन्तुष्ट होते हैं।

विशेष- १८६-१८७. भगवान् को सन्तुष्ट करने के लिए बहुत ज्यादा पैसे की जरूरत नहीं है। किन्तु भक्ति की जरूरत है। भक्ति से केवल जल चढाने से भी भगवान् संतुष्ट होते हैं। गीता में भी यही कहा गया है 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि'।

आसीनस्य शयानस्य तिष्ठतो व्रजतोऽपि वा।

रमस्व पुण्डरीकाक्ष नृसिंह हृदये मम ।।188॥

आसीनस्य= बैठा हुआ शयानस्य = सोया हुआ तिष्ठतः=खडा हुआ व्रजतः अपि वा = अथवा जा रहा हुआ मम = मेरे हृदये = मन में पुण्डरीकाक्ष= कमल जैसे आंखोंवाले हे नृसिंह= हे नृसिंहरूपी भगवान्! रमस्व =आप विहार करें।

करावलम्बनं देहि श्रीकृष्ण कमलेक्षण।

भवपङ्कार्णवे घोरे मज्जतो मम सर्वदा॥189॥

कमलेक्षण = कमल जैसे आंखोंवाले श्री कृष्ण जी घोरे भवपङ्कार्णवे= अत्यन्त घोर इस संसार रूपी कीचड के समुद्र में मज्जतः= गिर रहे मम= मेरे लिए सर्वदा= सर्वकालों में करावलम्बनं देहि= हाथ के अवलम्बन देकर उठाकर पार करें।

सर्वगश्चैव सर्वात्मा सर्वावस्थासु चाच्युत।

रमस्व पुण्डरीकाक्ष नृसिंह हृदये मम॥190॥

पुण्डरीकाक्ष नृसिंह= हे कमल जैसे आंखों वाले नृसिंह भगवान्! आप सर्वगः च =सर्वत्र रहनेवाले हैं। सर्वात्मा= सब जीवों के नियन्ता हैं। अतः सर्वावस्थासु = मेरे जीवन के जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में मम हृदये= मेरे हृदय में रमस्व= विहार करते रहें।

त्राहि त्राहि जगन्नाथ वासुदेवाच्युताव्यय।

मां समुद्धर गोविन्द दुः खसंसारसागरात्॥191॥

अच्युत= किसी प्रकार के च्युतिरहित अव्यय= व्ययरहित जगन्नाथ= जगत्प्रभु गोविन्द=वेदों का उद्धारक वासुदेव = वसुदेव पुत्र श्री कृष्ण! त्राहि

त्राहि = हमारी रक्षा करें । दुःखसंसारसागरात्= दुःखमय इस संसार समु
से समुद्धर=उद्धार करें।

एतत्पुण्यं परं गुह्यं पवित्रं पापनाशनम्।

आयुष्यं च यशस्यं च धन्यं दुः स्वप्ननाशनम्॥ 192॥

एतत् = इस प्रकार से प्रार्थना करना पुण्यं = अत्यन्त पुण्यकर है, परं गुह्यं=
अत्यन्त गोपनीय है, पवित्रं= पावन है, पापनाशनं= पापनाशक है
आयुष्यं= आयु को बढाता है, यशस्यं= यश को बढाता है, धन्यं= धनप्र
है , दुःस्वप्ननाशनम्= दुःस्वप्नों से बचाता है।

विशेष-188-192. मेरे मन सर्वदा भगवान् नृसिंह जी का स्मरण करते रहें
बैठे समय, सोते समय, खडे होते हुए, जाते हुए, इन सभी अवस्थाओं मे में
मन में भगवान् सर्वदा रहें। यह संसार तो कीचड का सागर है। इस में ह
लोग प्राणी गिर रहे हैं। इससे बचाने वाले एकमात्र भगवान् श्री कृष्ण हैं।
भगवान् श्री कृष्ण ! कृपया हाथ से हम लोगों को उठाकर इस संसार से पा
करें। आप तो सर्वत्र रहने वाले हैं। सब जीवों के नियामक आप ही हैं। ह
लोग सर्वथा अस्वतन्त्रतम व्यक्ति हैं। अतः जाग्रतकाल- स्वप्नावस्था
सुषुप्त्यवस्था इन तीनों अवस्थाओं में मेरे हृदय में रहते हुए मेरी रक्षा करें ।

'हे अच्युत! अव्यय! गोविन्द! जगन्नाथ! वसुदेवपुत्र श्री कृष्ण! आप हम क
संसार से बचाओ । कष्ट से बचाओ' इस प्रकार से सर्वदा भगवान् का ना
स्मरण करने पर उन की प्रार्थना करने पर पुण्यप्राप्ति होती है, पाप नष्ट हो
हैं, हमारे आयु-यश-धन बढता है। सारे दुःस्वप्न नष्ट होंगे। भगवान् क

प्रार्थना अत्यन्तपुण्यदायक है। अतः सर्वदा करना चाहिए।

कलौ पापं कियन्मात्रं हत्यास्तेयादिसंभवम्।

स्मृते मनसि गोविन्दे दह्यते तूलराशिवत्॥ 193॥

कलौ= कलियुग मे हत्यास्तेयसमुद्भवम्= मारना चुराना इत्यादि से प्राप्त होनेवाला पापं= पाप कियन्मात्रं= कितना है? मनसि= मन में गोविन्दे= गोविन्द जी को स्मृते= स्मरण करने पर तूलराशिवत्=रूयी के समूह के समास दह्यते= यह पाप जल जाता है।

कलौ केशवभक्तानां न भयं विद्यते क्वचित्।

स्मृते संकीर्तिते ध्याते संक्षयं याति पातकम्॥ 194॥

कलौ= कलियुग में केशवभक्तानां= भगवान् के भक्तों को क्वचित्= किञ्चित् भी भयं= भय न विद्यते= नहीं है। स्मृते= भगवान् को स्मरण करने से संकीर्तिते= संकीर्तन करने से ध्याते=ध्यान करने से पातकं= पाप संक्षयं याति= नष्ट हो जाता है।

विशेष- १९३-१९४. भगवान् के स्मरण, कीर्तन, ध्यान से सारे पाप नष्ट होते हैं। अपनी इच्छा के बिना आकस्मिक रूप से यदि किसी को मार डाल दिया हो अथवा किसी चीज को चुराया हो, उससे जो पाप उत्पन्न होता है वह पाप भगवत्स्मरण से नष्ट हो जाता है। केवल ऐसे आकस्मिक पापों के लिए प्रायश्चित्त भगवत्स्मरण है। हर दिन चोरी करनेवाले डकैत लोगों के लिए यह प्रायश्चित्त नहीं है।

अध्येतव्यमिदं शास्त्रं श्रोतव्यमनसूयया।

भक्तेभ्यश्च प्रदातव्यं धार्मिकेभ्यः पुनः पुनः॥ 195॥

इदं शास्त्रं = भागवत इत्यादि विष्णुभक्तिप्रचारक शास्त्रों को अध्येतव्यं= पढना चाहिए, अनसूयया= असूया के बिना श्रोतव्यं= सुनना चाहिए धार्मिकेभ्यः= धर्मभीरु भक्तेभ्यश्च= भक्तों को भी पुनः पुनः= बार बा प्रदातव्यं= इस शास्त्र को उपदेश देना चाहिए।

अधीयान इदं शास्त्रं विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति च परं पदम्॥ 196॥

उत्तमं= अत्यन्त उत्कृष्ट विष्णोः माहात्म्यं= विष्णुमाहात्म्यप्रतिपादक इ शास्त्रं = इस शास्त्र को अधीयानः= पढकर सर्वपापविनिर्मुक्तः= सब पापों रं मुक्त होकर परं पदं च= विष्णु लोक को भी प्राप्नोति= प्राप्त करता है।

श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम्।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षं च विन्दति॥ 197॥

श्रुत्वा= शास्त्र श्रावण से धर्मं विजानाति = धर्म का ज्ञान प्राप्त करता है श्रुत्वा= शास्त्र श्रावण से ज्ञानं= परमात्मज्ञान को अवाप्नोति= प्राप्त करत है। श्रुत्वा = शास्त्र श्रवण से मोक्षं च= मोक्ष को भी विन्दति = प्राप्त करत है।

तस्मादिदं सदा श्राव्यं श्रोतव्यं च सदैव हि।
कुतर्कदावदग्धेभ्यो न दातव्यं कदाचन॥ 198॥

तस्मात्= इस कारण से इदं= इस शास्त्र को सदा= सर्वदा श्राव्यं = दूस लोगों की सुनवाना चाहिए, और सदैव हि = सर्वदा स्वयं को भी अपने ं ज्येष्ठ लोगों से श्रोतव्यं= सुनना चाहिए। कुतर्कदावदग्धेभ्यः= कुतर्करूप

वनाग्नि से दग्ध मूर्ख जीवियों को कदाचन = कभी भी न दातव्यं= नहीं देना चाहिए।

विशेष- विष्णुभक्तिप्रतिपादक भागवत इत्यादि सच्छास्त्रों को सर्वदा पुनः पुनः आवृत्ति करते रहना चाहिए । स्वयं पढना चाहिए और दूसरे धार्मिक श्रद्धालुओं को भी सुनवाना चाहिए। इस से धर्म का (सामाजिक व्यवस्था रूपी धर्म) ज्ञान प्राप्त होता है। अज्ञान नष्ट होता है। भगवान् का ज्ञान प्राप्त होने से भगवान् के वैकुण्ठ लोक को भी प्राप्त कर सकते हैं। दुर्विचारी लोगों में इस की महत्ता नहीं होगी। उन दुर्विचारी लोगों को यह विषय नहीं बताना चाहिए।

संसारविषपानेन ये मृताः प्राणिनो भुवि।

अमृताय स्मृतस्तेषां कृष्णामृतमहार्णवः ॥ 199 ॥

भुवि= भूमि पर ये प्राणिनः= जो प्राणी संसारविषपानेन= संसार रूपी विषपान से मृताः= मर गये हैं तेषां= उन प्राणियों को उठाने हेतु अमृताय= अमृत सेचन के लिए कृष्णामृतमहार्णवः= कृष्णरूपी अमृत समुद्र प्रस्तुत है।

विशेष- श्रीकृष्ण जी तो अमृत के सागर हैं। उस अमृत सागर के एक भी बूँद के स्पर्श से संसाग्नि से तपे हुए लोग उद्धृत हो सकते हैं। अतः उस अमृत का सेवन करना चाहिए।

क्लिन्नं पादोदकेनैव यस्य नित्यं कलेवरम्।

तीर्थकोटिसहस्रैस्तु स्नातो भवति प्रत्यहम्।

तीर्थकोटिसहस्रैस्तु सेवितैः किं प्रयोजनम्।

तोयं यदि पिबेन्नित्यं शालग्रामशिलाच्युतम्॥ 200 ॥

यस्य= जिस पुरुष का कलेवरं= शरीर नित्यं= प्रतिदिन पादोदकेनैव= भगवत्पादोदक से क्लिन्नं= गीला हुआ है वह पुरुष प्रत्यहं= प्रतिदिन तीर्थकोटिसहस्रैः तु= हजारों करोडों तीर्थों के स्नातो भवति= स्नान का फल को प्राप्त करता है।

शालिग्रामशिलाच्युतं= शालिग्राम शिला से निर्गलित तोयं= तीर्थजल को यदि= यदि नित्यं= प्रतिदिन जो भी पुरुष पिबेत्= पीता हो उस पुरुष को तीर्थकोटिसहस्रैः सेवितैः तु= हजारों करोडों तीर्थों को जल पीने से किं प्रयोजनं= क्या प्रयोजन है?

शालग्रामशिलास्पर्शं ये कुर्वन्ति दिने दिने।

वाञ्छन्ति करसंस्पर्शं तेषां देवाः सवासवाः ॥201॥

ये =जो पुरुष दिने दिने= प्रतिदिन शालिग्रामशिलास्पर्शं= शालिग्रामशिला पूजन करने हेतु उस को स्पर्श करते हैं तेषां= उन पुरुषों के करसंस्पर्शं= कर से स्पर्श करने के लिए सवासवाः= इन्द्र सहित देवाः=देवताऐं वाञ्छन्ति= इच्छुक रहते हैं।

विशेष-200-201. जो पुरुष प्रतिदिन हरिपादोदक को सिर में धारण करता है उस को बाकी तीर्थ क्षोत्रों में स्नान करने से कोई लाभ नहीं हैं। जो पुरुष शालिग्रामशिलातीर्थ को पीता है उस पुरुष को अन्य तीर्थ-क्षेत्रों के जल मे स्नान करना या उस पवित्र जल को पीने से कुछ भी प्रयोजन नहीं है। हजारों करोडों तीर्थक्षेत्रों से शालिग्रामशिला तीर्थ अत्यन्त उत्कृष्ट है। उस को प्रतिदिन सेवन करनेवाला पुरुष के घर में ही सारे तीर्थक्षेत्र स्वयं संनिहित होंगे । जो पुरुष प्रतिदिन शालिग्राम शिला का स्पर्श करता है उस पुरुष का

हस्तस्पर्श करने के लिए सारे देवताऐं लालायित रहते हैं।

दुःसहो नारको वन्हिर्दुःसहा यमकिंकराः।

विषमश्चान्तकपथः प्रेतत्वं चातिदारुणम्॥ 202॥

विचिन्त्य मनसाऽप्येवं पातकाद्विनिवर्तयेत्।

स्मरणं कीर्तनं विष्णोः सदैव न परित्यजेत्॥ 203॥

नारको वह्निः= नरकाग्नि दुःसहः= अत्यन्त कठिन होता है। यमकिंकराः= यम के दूत लोग दुःसहाः= अत्यन्त कठिन होते हैं। अन्तकपथः=यमलोक का मार्ग विषमः=अत्यन्त दुर्गम है। प्रेतत्वं च= प्रेत शरीर में रहना भी अतिदारुणं= अत्यन्त दुःस्सह है। एवं = पूर्वोक्त प्रकार से मनसापि = मन से भी विचिन्त्य= विचार कर पातकात् = पापकर्म से विनिवर्तयेत्= दूर हटना चाहिए। विष्णोः=विष्णु भगवान् का स्मरणं = स्मरण को तथा कीर्तनं= कीर्तन को सदैव= सर्वदापि न परित्यज्येत्= कभी नहीं छोडना चाहिए।

विशेष- २०२-२०३. हम लोग नित्य जीवन में अनेकविध पाप करते हैं। कभी मिथ्याभाषण कभी परद्रोह, कभी पराहित, परहिंसा इत्यादि हमारे पापकर्मों का कोई अन्त नहीं होता है। किसी न किसी ऐहिक सुखभोगार्थ इस प्रकार पापकर्म करते हैं। परन्तु पापकर्म करने से पहले हमलोगों को सोचना चाहिए कि 'पापकर्म से नरक प्राप्ति हो जायेगी । नरक कितना भयंकर है। यमदूत किस प्रकार से हम लोगों को दण्डित करते हैं। किस प्रकार से भूलोक से यमलोक तक भयंकर रास्ते में से ले जाते हैं। इस भौतिक शरीर के छूटने पर प्राप्त होने वाले प्रेत शरीर कितना भयंकर होता है' इस प्रकार से सोचने मात्र से ही हम इस पाप कर्म से निवृत्त हो जायेंगे। तथा सर्वदा हरि

स्मरण- हरिसंकीर्तन करते ही रहना चाहिए। उसे कभी भी छोडना नहीं चाहिए।

वेदव्यासः-

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।

नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ 204॥

अच्युतानन्दगोविन्दनामोच्चारणमभेषजात्= अच्युत अनन्त गोविन्द इस प्रकार तीनों नामों के उच्चारण रूपी दवाई से सकलाः रोगाः= सभी रोग नश्यन्ति= नष्ट हो जाते हैं। अहं वदामि= मैं जो बोल रहा हूँ वह सत्यं सत्यं= सत्य है, सत्य है।

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।

बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥ 205॥

येन= जिस पुरुष ने सकृत्= कभी एक बार हरिः इति अक्षरद्वयं= 'हरिः' इस प्रकार के दो अक्षरों को उच्चरितं= उच्चारण किया है तेन=उस पुरुष ने मोक्षाय गमनं प्रति= मोक्ष जाने हेतु परिकरः बद्धः= सारी व्यवस्था कर ली है।

एवं ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः।

कीर्तयन्ति सुरश्रेष्ठं देवं नारायणं प्रभुम्॥ 206॥

एवं= इस प्रकार से ब्रह्मादयः देवाः=चतुर्मुख ब्रह्मा इत्यादि देवगण तपोधनाः= ऋषयः= तपस्वी ऋषिलोग भी सुरश्रेष्ठं देवं = देवताश्रेष्ठ देव नारायणं प्रभुं= प्रभु नारायण जी का कीर्तयन्ति= स्तोत्र करते हैं।

किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः।

यो नित्यं ध्यायते देवं नारायणमनन्यधीः ॥ 207 ॥

यः= जो पुरुष अनन्यधीः= एकाग्र मन से नित्यं= प्रतिदिन देवं नारायणं = प्रभु नारायण का ध्यायते= ध्यान करता है तस्य= उस पुरुष को दानैः किं= दान से क्या लाभ? तीर्थैः किं= तीर्थे क्षेत्रों से क्या लाभ? तपोभिः किं?= तपस्या से क्या लाभ? अध्वरैः किं= सोमयागों से क्या लाभ? (नारायण स्मरण से ही सब प्रयोजन प्राप्त होने के कारण तीर्थक्षेत्रों से कुछ भी प्रयोजन नहीं है)

नित्योत्सवो भवेत्तेषां नित्यश्रीर्नित्यमङ्गलम्।

येषां हृदिस्थो भगवान्मङ्गलायतनं हरिः।। 208।।

मङ्गलायतनं= सारे मङ्गलों के आधार भगवान् = षड्गुणैश्वर्यसंपन्न हरिः= भगवान् श्री विष्णु येषां हृदिस्थः= जिन पुरुषों के हृदय में रहता हैं तेषां= उन पुरुषों के गृहे= घरों में नित्योत्सवः=प्रति दिन उत्सव होगा, नित्यश्रीः= प्रतिदिन संपदाएं रहेंगी, नित्यमङ्गलं= प्रति दिन मङ्गल कार्य होगा।

विशेष- २०४-२०८. भगवान् जिस के हृदय में रहता है उस पुरुष के घर में सर्वदा शुभ है, सर्वदा उत्सव होता है। सर्वदा सब प्रकार की संपदा होती है, उस पुरुष को दान, तीर्थ, क्षेत्र, तपस्या, यज्ञ, याग, इत्यादि का कोई आवश्यकता नहीं होगी। सारे इष्टार्थ भगवन्नामध्यान से ही सिद्ध होंगे। वह पुरुष मोक्ष को अवश्य ही प्राप्त करेगा। मोक्ष के लिए अन्य साधना की

आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार से ब्रह्मा रुद्र इन्द्र इत्यादि देवताएं तथा ऋषि लोग सर्वदा भगवान् के गुण गान करते रहते हैं।

शरीर में नान विधव्याधियां तो होती ही हैं। अनेक रोग दुःसाध्य हेते हैं, इलाज नहीं होती है। उस स्थिति में 'अच्युत अनन्त गोविन्द' इस प्रकार से तीन नामों के उच्चारण निरन्तर करते रहना चाहिए। उससे रोग शान्त हो जाते हैं।

जीवंश्चतुर्दशादूर्ध्वं पुरुषो नियमेन तु।

स्त्री वाऽप्यनूनदशकं देहं मानुषमार्जयेत्॥ 209॥

चतुर्दशोर्ध्वजीवीनि संसारश्चादिवर्जितः।

अविदित्वा परं देवं मोक्षाशा का महामुने॥ 210॥

महामुने= हे मुने! चतुर्दशात् ऊर्ध्वं= चौदह साल की ऊपर कीं उम्र में जीवन् = जीवित रहने वाला पुरुषः= कोई पुरुष, चतुर्दशोर्ध्वजीवीनि स्त्री वा= चौदह साल की उम्र से अधिक जीवित रहने वाली स्त्री भी नियमेन तु= अत्यन्त नियमित रूप से अनूनदशकं= कम से कम दस मानुषं देहं = मनुष्य देह के कारणीभूत कर्मों को आर्जयेत्= अर्जन करता है। संसारश्च= संसार तो आदिवर्जितः= अनादि और अनन्त है। इस कारण से परं देवं= सर्वोत्कृष्ट देवता नारायण को अविदित्वा = न जानने पर का मोक्षाशा = मोक्ष की आशा क्या है?

आचतुर्दशमाद्वर्षात् कर्माणि नियमेन तु।

दशावराणां देहानां कारणानि करोत्ययम्।

अतः कर्मक्षयान्मुक्तिः कुत एव भविष्यति॥211॥

अयं पुरुषः= कोई पुरुष आचतुर्दशमात् वर्षात्= चौदह साल के उम्र के बाद नियमेन तु= नियमित रूप से दशावराणां= कम से कम दस देहानां= शरीरों के कारणानि= कारणीभूत कर्म करोति= करता है। अतः= इस कारण से कर्मक्षयात्= कर्मक्षय से मुक्तिः= मोक्ष कुत एव भविष्यति= कैसे होगी?

विशेष- 209-211. इस धरती पर जीवन यापन करने के लिए खान पान की जरूरत है। पेड पौधों को नष्ट करते हुए उन के फल पुष्प रस इत्यादि को विविध रूप रंग देते हुए मनुष्य अपना भोजन बनाता है। पेड पौधे भी हम जैसे ही जीव है। उनको मारने से ही हमारा पेट भरेगा। इसी प्रकार वायु में रहनेवाले जीवों को, धरती पर रहने वाली चीटी इत्यादि जीवों को प्रतिक्षण मारने के बिना हमारा जीवन नहीं चलता है। इन सारे जीवों की हत्या से प्रतिदिन बहुत पाप उत्पन्न होता है जिसे भोगने के लिए कम से कम दस जन्मों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार से एक साल में हम इतना पाप पैदा करते हैं कि उस को भोगने हेतु ३६५० बार जन्म लेना पडता है। इस प्रकार जाते जाते जितने जन्म लेंगें उतने ही पाप करेंगें, फिर उसको भोगने के लिए और अधिक जन्म लेना पडेगा। अतः इसी कर्मचक्र में ही जीव उलझता रहेगा। कभी भी कर्मचक्र बन्द नहीं होगा। अतः कर्मक्षय से मुक्ति कभी भी हो नहीं सकती है।

समानां विषमा पूजा विषमानां समा तथा।

क्रियते येन देवोपि स्वपदाद् भ्रश्यते हि सः।। 212।।

येन= जिस पुरुष के द्वारा समानां= समान योग्यता वाले लोगों को विषमा पूजा= भेदभाव कर संमान तथा विषमाणां= विभिन्न योग्यतावाले लोगों को समा पूजा= भेदभाव के बिना समान रीति से संमान क्रियते= किया जाता है सः= वह पुरुष देवः अपि= स्वयं देवता होने पर भी स्वपदात्= अपने अधिकार पद से भ्रश्यते= भ्रष्ट होता है।

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या चैव तु पञ्चमी।

एतानि मान्यस्थानानि गरीयो ह्युत्तरोत्तरम्॥213॥

वित्तं=पैसा बन्धुः=रिश्ता वयः= आयु कर्म= यज्ञ याग इत्यादि सत्कर्म और पञ्चमी विद्या च एव = पाँचवी विद्या एतानि= ये पाँच मान्यस्थानानि= संमान के कारण होंगे। इन में उत्तरोत्तरं= आगे आनेवाला जो है गरीयः= वही श्रेष्ठ होता है।

गुणानुसारिणीं पूजां समां दृष्टिं च यो नरः।

सर्वभूतेषु कुरुते तस्य विष्णुः प्रसीदति।। 214।।

यः नरः= जो पुरुष सर्वभूतेषु = सभी पदार्थों में गुणानुसारिणीं पूजां= तत्तदीय योग्यतानुसार सम्मान तथा समां दृष्टिं च= समदृष्टि को भी कुरुते= करता है, तस्य = उस पुरुष पर विष्णुः= भगवान् प्रसीदति= प्रसन्न होंगे।

यथा सुहृत्सु कर्तव्यं पितृमातृसुतेषु च।

तथा करोति पूजादि समबुद्धिः स उच्यते॥215॥

यथा = जिस प्रकार सुहृत्सु = अपने रिश्तेदारी के पितृमातृसुतेषु= पिता माता पुत्र इत्यादि में सम्मान इत्यादि कर्तव्यं= करना चाहिए, तथा= उसी

प्रकार अन्य लोगों में पूजादि= सम्मान इत्यादि करोति= जो करता है सः = वह पुरुष समबुद्धिः उच्यते= समबुद्धि कहा जाता है।

विशेष- २१२-२१५. समाज में सम्मान के कारण के रूप में जिन की गणना होती है। वह है विद्या, यज्ञ याग इत्यादि सत्कर्म, उम्र, बन्धुता और पैसा। इन में सर्वोत्कृष्ट है ज्ञान। जो अधिक ज्ञानी है उसी को प्रथम स्थान, सत्कार्य करनेवालों को द्वितीय, वयसा वृद्ध होने पर तृतीय स्थान, माता पिता इत्यादि बन्धुओं का चतुर्थ स्थान, तथा सर्वान्तिम स्थान धन का है। इस शास्त्रीय क्रम में ही सम्मान करना चाहिए। तथा समान योग्यता वाले लोगों के बीच में किसी को अधिक आदर करना, किसी को कम आदर करना, ऐसे विषमता नहीं दिखाना चाहिए। और विषम योग्यतावालों को समान पूजा भी करना नहीं चाहिए। इस प्रकारकी गलती से देवताए भी अपने पद से भ्रष्ट हो जायेंगे। अतः उनकी योग्यतानुसार ही पूजा करनी चाहिए। तथा सर्वत्र पदार्थों में समबुद्धि से भगवान् को देखना चाहिए। उस से भगवान् सन्तुष्ट हो जाते हैं। समदृष्टि का अर्थ है कि सर्वत्र भगवान् को देखना, नतु सब पदार्थों को समान समझना है, क्यूँकि सब पदार्थ समान कभी भी न होंगे। लोहा और सोना बबूल और चन्दन वृक्ष यह दोनों समान कैसे होंगे? जैसे अपने माता पिता के प्रथमतया सम्मान, पुत्र भार्या इत्यादि का अनन्तर इस प्रकार से सम्मान होता है, वैसे ही अन्यलोगों में भी तत्तदीय योग्यतानुसार 'ये सब भगवान् के दास हैं' ऐसा मानकर उन का सम्मान करना चाहिए।

ऊर्ध्वपुण्ड्र की महिमा

तिर्यक्पुण्ड्रं न कुर्वीत संप्राप्ते मरणेऽपि वा।

न चान्यन्नाम विब्रूयात्परान्नारायणादृते॥216॥

मरणे संप्राप्तेपि वा= मरण काल में भी तिर्थक्युण्ड्रं=तिरछा तिलक न कुर्वीत=नहीं करना चाहिये। परात्= अत्यन्त श्रेष्ठ नारायणात्= नारायण नाम को ऋते = छोडकर अन्यत्= दूसरे नाम= नाम को न विब्रूयात्= नहीं बोलना चाहिये।

नैवेद्यशेषं देवस्य यो भुनक्ति दिनेदिने।

सिक्थे सिक्थे भवेत्पुण्यं चान्द्रायणशताधिकम्।। 217।।

यः = जो पुरुष दिने दिने= प्रतिदिन देवस्य= भगवान् श्रीकृष्ण जी को नैवेद्यशेषं = निवेदित भोग शेष को भुनक्ति= भोजन करता है उस पुरुष को सिक्थे सिक्थे= प्रति ग्रास में चान्द्रायणशताधिकम्= एक सौ चान्द्रायण व्रतों से भी अधिक पुण्यं= पुण्य भवेत्=प्राप्त होता है।

ऊर्ध्वपुण्ड्रमृजुं सौम्यं ललाटे यस्य दृश्यते।

सं चण्डालोऽपि शुद्धात्मा पूज्य एव न संशयः॥218॥

यस्य=जिस पुरुष का ललाटे= माथे पर ऋजुं सौम्यं= सीधा और कोमल ऊर्ध्वपुण्ड्रं= सीधे तिलक दृश्यते= दिखायी देता है सः= वह पुरुष चण्डालोपि= अत्यन्त हीन जाति का चण्डाल होने पर भी शुद्धात्मा= अत्यन्त शुद्ध और पूज्यः एव=पूजनीय ही है। न संशयः= इस में कोई संशय नहीं है।

अशुचिर्वाप्यनाचारो मनसा पापमाचरन्।

शुचिरेव भवेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्राङ्कितो नरः।। 219।।

ऊर्ध्वपुण्ड्राङ्कितः नरः= सीधे तिलक धारण किया हुआ पुरुष अशुचिर्वापि= अशुचि होने पर भी अनाचारः= अत्यन्त दुराचारी होने पर भी मनसा पापम् आचरन्= मन से पाप आचरण करते हुए भी नित्यं= प्रतिदिन शुचिरेव भवेत्=शुचि ही होता है।

ऊर्ध्वपुण्ड्रहीनस्य श्मशानसदृशं मुखम्।

अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवलोकयेत्॥ 220॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्य=ऊध्वपुण्ड्र से रहिन नर का मुखं= मुख श्मशान-सदृशम्= श्मशान के सदृश है। तेषां= ऐसे लोगों के मुखं= मुख को अवलोक्य= देखकर आदित्यम्= सूर्य को अवलोकयेत्= देखना चाहिये।

यज्ञो दानं तपश्चैव स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।

व्यर्थं भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्॥ 221॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्= ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण किये बिना किया गया यज्ञः दानं तपः स्वाध्यायः पितृतर्पणं च एव= यज्ञ, दान, तप, वेदाध्ययन, पितृश्राद्ध इत्यादि तत्सर्वं=यह सब व्यर्थं भवति = व्यर्थ होता है।

विशेष- 216-221. विष्णुभक्त का विशेष कर्तव्य है ऊर्ध्वपुण्ड्रधारण। सीधे तिलक तो साक्षात् हरि का आवासस्थान है। ऊर्ध्वपुण्ड्र के बिना किये जानेवाले यज्ञ याग तप वेदाध्ययन इत्यादि सभी प्रकार के सत्कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। इन सत्कर्मों से किसी फल कि प्राप्ति नहीं होती है। ऊर्ध्वपुण्ड्र के बिना मुख श्मशान के सदृश होता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र रहित पुरुष का मुख को देखकर प्रायश्चित्त हेतु सूर्य को देखना चाहिये। ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी पुरुष कितने भी दुराचारी अशुचि दुष्ट हो परन्तु वह शुचि ही होगा। ऊर्ध्वपुण्ड्र समाज के

प्रत्येक वर्ग के लिये भी अनिवार्य है। ऊर्ध्वपुण्ड्र से शोभित अन्त्यज भी पूजनीय है। अतः सर्वदा ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करना ही चाहिये। कभी भी तिरछा तिलक धारण (तिर्यक् भस्मधारण) नहीं करना चाहिये।

उसी प्रकार प्रतिदिन भगवान् को समर्पित भोगशेष को खानेवाला पुरुष को भोजन का प्रत्येक ग्रास में एक सौ चान्द्रायण व्रत का फल प्राप्त होता है। अतः प्रतिदिन हम जो भी खाद्यपदार्थ तैयार करते हैं उस को भगवान् को भोग लगाकर बाद में उसी को खाना चाहिये। अन्य खाद्यपदार्थ नहीं खाना चाहिये।

गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो यं यं पश्यति चक्षुषा।
तं तं शुद्धं विजानीयान्नात्र कार्या विचारणा॥222॥

गोपीचन्दनलिप्ताङ्गः= गोपीचन्दन से बारह जगहों में परिलेपित शरीरवाले पुरुष यं यं=जिस जिस पुरुष को चक्षुषा= आंखों से पश्यति= देखता है तं तं=उन सारे लोगों को शुद्धं विजानीयात्= शुद्ध मानना चाहिये। अत्र= इस विषय में विचारणा न कार्या= कोई विचार नहीं करना चाहिये।

आस्फोटयन्ति पितरः प्रनृत्यन्ति पितामहाः।
वैष्णवोऽस्मत्कुले जातः स नः संतारयिष्यति॥223॥

'अस्मत्कुले= हमारे कुल में वैष्णवः विष्णुभक्त पुरुष जातः= पैदा हुआ है। सः = वह पुरुष अस्मान्= हम लोगों को तथा पूर्वजों को सन्तारयिष्यति = नरक से पार कराएगा' इस प्रकार से पितरः = पिता पितृव्य इत्यादि लोग आस्फोटयन्ति= जोर से आवाज करते हैं। पितामहाः=पितामह मातामह इत्यादि लोग प्रनृत्यन्ति= नाचते हैं।

जीवितं विष्णुभक्तस्य वरं पञ्चदिनान्यपि।

न तु कल्पसहस्रैस्तु भक्तिहीनस्य केशवे॥ 224॥

विष्णुभक्तस्य= विष्णुभक्त पुरुष का पञ्चदिनान्यपि जीवितं= केवल पांचदिन का जीवन भी वरं=अत्यन्त श्रेष्ठ है। केशवे भक्तिहीनस्य= नारायण भगवान् में भक्तिरहित पुरुष का कल्पसहस्रैः तु= हजारों कल्पों तक जीवन से भी न तु= कोई प्रयोजन नहीं है।

किं तेन जातमात्रेण भूभारेणान्नशत्रुणा।

यो जातो नार्चयेद्विष्णुं न स्मरेन्नापि कीर्तयेत्॥ 225॥

यः= जो पुरुष जातः=भूमि में उत्पन्न होकर विष्णुं नार्चयेत्= भगवान् की पूजा नहीं करता है, न स्मरेत्= स्मरण भी नहीं करता है, नापि कीर्तयेत्= नामसंकीर्तन भी नहीं करता है, वैसे भूभारेण= भूमिको केवल अपना वजन से कष्ट देनेवाला अन्नशत्रुणा= केवल भोजन के लिये जातमात्रेण = जन्म लिया हुआ तेन= उस पुरुष से किं= कौन सा लाभ है ?

विशेष- 222-225. मुख में जैसे ऊर्ध्वपुण्ड्र का धारण किया जाता है उसी प्रकार देह को बारह अलग अलग स्थानों पर गोपीचन्दन का लेपन किया जाता है। ऐसे गोपी चन्दनधारी पुरुष जिन जिन को देखता है वह सब शुद्ध हो जोयेंगे।

विष्णुभक्तसन्तान से उन के पूर्वज नरक से पार होजाते हैं। विष्णुभक्त पांच ही दिन तक जीवन करेगा तो भी वह सार्थक जीवन है। भक्तिरहित पुरुष ब्रह्मा जी जैसे हजारों कल्पों तक जीवन करने पर भी उस जीवन का कोई फल नहीं है। अतः विष्णुभक्त सन्तति पैदा होने पर पितृ-

पितामह-भ्रातृ-मातुल इत्यादि सब लोग आनन्द से बोलेंगे कि "यह विष्णुभक्त हमारे कुल में पैदा हुआ है। वह हम लोगों की नरक से रक्षा करेगा"। विष्णुभक्तिरहित सन्तान से कुल में किसी को सुख, सन्तोष का अनुभव नहीं होता है। वह सन्तान भूमि को अपने भार से केवल कष्ट देता है। केवल भोजन करता रहता है। उस से कोई प्रयोजन नहीं है।

यो ददाति द्विजातिभ्यश्चन्दनं गोपिमर्दितम्।

अपि सर्षपमात्रेण पुनात्यासप्तमं कुलम्॥226॥

यः = जो पुरुष गोपिमर्दितं= गोपियों के द्वारा कृष्ण के शरीर में लेपित चन्दनं= गोपीचन्दन को द्विजातिभ्यः= ब्राह्मणों कि लिये ददाति=दान देता है उस दान के रूप में दिये जानेवाला सर्षपमात्रेण= एक रायी के कण के परिमाणवाले गोपीचन्दन से भी आसप्तमं= सात पीढियों तक कुलं= अपने कुल को पुनाति= पवित्र करता है।

विशेष- वैष्णवों को प्रति दिन स्नान के बाद संध्या से पहले बारह जगहों पर गोपीचन्दन धारण करना चाहिये। द्वापर युग में इस पीला माटी को गोपियों ने कृष्ण के शरीर में लेपन किया था। इस लिये इस को गोपीचन्दन नाम दिया गया है। रायी के एक कण की मात्रा में ब्राह्मणों को गोपीचन्दन देने से ही अपने सात पीढियों का उद्धार हो जाता है। अतः प्रति दिन शरीर में गोपीचन्दन धारण करना चाहिये।

ज्ञानी च कर्माणि सदोदितानि कुर्यादकामः सततं

भवेत।।227।।

ज्ञानी च=भगवान् को साक्षात् देखा हुआ ज्ञानी पुरुष भी सदा= सर्वदा उदितानि= शास्त्रों में कहे गये कर्माणि= संध्यावन्दन, देवपूजा, एकादशी उपवास इत्यादि कर्म कुर्यात्= करे। वह पुरुष सततं= सर्वदा अकामः= कर्मों के फल में कामनारहित भवेत= हो।

अतीतानागतज्ञानी त्रैलोक्योद्धारणक्षमः।

एतादृशोऽपि नाचारं श्रौतं स्मार्तं परित्यजेत्॥ 228॥

कोई पुरुष अतीतानागतज्ञानी= भूत भविष्यत् के ज्ञानी हो सकता है, त्रैलोक्योद्धारणक्षमः= तीनों लोकों के प्रजाओं का उद्धार करने में सक्षम हो सकता है, परन्तु एतादृशोपि= ऐसे पुरुष को भी श्रौतं= श्रुत्युक्त स्मार्तं= स्मृत्युक्त आचारं= संध्या-जप-देवपूजा इत्यादि आचार को न परित्यजेत्= छोडना नहीं चाहिये।

यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा

तदेव वीर्यवत्तरं भवति॥ 229॥

विद्यया= ज्ञानपूर्वक श्रद्धया= श्रद्धापूर्वक उपनिषदा= अपनी योग्यता के अनुसार यदेव करोति= जो कुछ भी करता है, तदेव= वहा कार्य वीर्यवत्तरं= अत्यन्त फलजनक होता है।

विशेष- 227- 229. न केवल हम जैसे पामरों कि लिये यह कर्म विहित है बलकि बडे बडे ज्ञानी लोगों को भी कर्माचरण अत्यन्त आवश्यक है। भगवान् को साक्षात् देखा हुआ अपरोक्ष ज्ञानी भी सन्ध्या, देवपूजा, उपवास इत्यादि सत्कर्म को छोड नहीं रह सकता है। भगवान् के साक्षात् दर्शन होने के बाद वह पुरुष जैसे जैसे अधिक कर्म करता है उस कर्म से मोक्ष में और आनन्द

बढता है। यह बात वेदों में आयी है। अतः ज्ञानी को भी कर्म करते रहना चाहिये।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते हि नरे॥230॥

इह= इस संसार में कर्माणि कुर्वन्नेव= कर्म करते हुए ही शतं समाः= सौ साल तक जिजीविषेत्= जीवित रहने की इच्छा करनी चाहिये। एवं= इस प्रकार के जीवन से नरे= मनुष्य में कर्म न लिप्यते= पाप कर्मों का लेपन नहीं होता है। त्वयि= तुम इतः अन्यथा= पूर्वोक्त प्रकार से दूसरी रीति से रहने पर न लिप्यते न= अवश्य ही पाप कर्म का लेपन होगा।

आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः॥231॥

वेदप्रणिहितः= वेदों के द्वारा बोधित कर्म ही धर्मः= धर्म माना गया है। तद्विपर्ययः= इस के विरुद्ध जो भी है वह अधर्मः= अधर्म माना गया है। धर्म के विषय में साधूनां= सज्जनों के आचारश्च एव= सदाचार आत्मनः तुष्टिरेव च= स्वयं की तुष्टि भी प्रमाण है।

निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु निवृत्तमिह चोच्यते।

निवृत्तं सेवमानस्तु ब्रह्माभ्येति सनातनम्।। 232।।

ज्ञानपूर्वं=ज्ञानपूर्वक निष्कामं= बिना कामना किये जानेवाला जो कर्म है वह इह= शास्त्र में निवृत्तम् उच्यते= निवृत्त कर्म कहा गया है। निवृत्तं सेवमानः

तु= निवृत्त कर्म को करनेवाला पुरुष सनातनं= अनादिनित्य ब्रह्म= परब्रह्म नारायण को अभ्येति= प्राप्त करता है।

विशेष- 230-232. न केवल भगवद्दर्शन के बाद सत्कर्माचरण से आनन्द बढता है बल्कि कर्म न करने पर या दुष्कर्म करने पर पाप से ग्रसित होता है। अतः ज्ञानी को भी कर्म करना अत्यन्त आवश्यक है।

मुख्यरूप में वेदों में जिन जिन क्रियाकलापों को विधान किया गया है वह क्रियाकलाप ही धर्म है। परन्तु धर्म का ज्ञान करना अत्यन्त कठिन है। 'क्या धर्म है' 'क्या अधर्म है' इस विषय में बडे बडे ज्ञानी लोग भी कभी कभी दिङ्मूढ हो जाते हैं। अतः किसी विषय में धर्म के बारे में आचार को प्रमाण मानना चाहिये। तद्देश के शिष्ट लोग जिस को धर्म मानते हैं वही धर्म होगा। कभी कभी शिष्टलोगों में भी मतभेद हो सकता है। ऐसी स्थिति में अपनी अन्तरात्मा (Intution) को प्रमाण मानना चाहिये। जिस से मन प्रसन्न होता है वही धर्म होगा।

यह धर्म दो प्रकारका है- निवृत्त और प्रवृत्त कर्म। फल की कामना से किये जानेवाला कर्म प्रवृत्त कर्म है। परन्तु प्रवृत्त कर्म से पुनः पुनः इसी संसारचक्र में फस जाते हैं। अतः फल की कामना के बिना ज्ञानपूर्वक निवृत्त कर्म करने पर नारायण का लोक को प्राप्त कर सकते है।

श्रीमदानन्दतीर्थार्यसहस्रकिरणोत्थिता।

गोततिः सततं सेव्या गीर्वाणैः शुद्धिदा भवेत्॥233॥

श्रीमदानन्दतीर्थार्यसहस्रकिरणोत्थिता=श्रीमदानन्दतीर्थ रूपी सूर्य से निकली गयी गोततिः= ये बाते गीर्वाणैः= भूलोक की देवताओं से सेव्या= अवश्य ग्राह्य हैं। यह वचनमाला शुद्धिदा भवेत्= शुद्धिदायक है।

यहां कृष्णामृतमहार्णव समाप्त होता है।

पाण्डुरङ्गीवीरनारायणाचार्यरचित हिन्दीविवृति समाप्त होती है।

अस्मद्गुर्वन्तर्गतभारतीरमणमुख्यप्राणान्तर्गतश्रीहरिः प्रीयताम्।

श्री हनुमत् भीम मध्वांर्गत रामकृष्ण

वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीपाय नमः

श्री राम श्री

श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यसंगृहीता

सदाचारस्मृतिः

पाण्डुरङ्गीवीरनारायणाचार्यरचिता हीन्दीविवृतिः

श्री मध्व तत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान प्रयाग

श्री अखित भारतीय पेजावर स्वामी अभिवंदन समिति

श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यसंगृहीता

सदाचारस्मृतिः

यस्मिन् सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।

निराशीर्निर्ममो याति परं जयति सोच्युतः।।1।।

पाण्डुरङ्गीवीरनारायणाचार्यरचिता हिन्दीविवृतिः

वन्दे गोविन्दमानन्दज्ञानदेहं पतिं श्रियः। श्रीमदानन्दतीर्थार्यवल्लभं परमक्षरम्।।

आचार्यचरणं नौमि **विश्वेशाख्ययतिं** सदा। यदनुग्रहलेशेन प्राप्ता विद्या विमुक्तिदा।।

अध्यात्मचेतसा= बुद्धि को अध्यात्मनिष्ठ कर निराशीः = कर्म फल की आशा छोडकर निर्ममः= ममता रहित होकर सर्वाणि कर्माणि= हम लोगों के द्वारा किये जानेवाले नित्य नैमित्तिक कर्मों को यस्मिन्= जिस भगवान को संन्यस्य= समर्पित कर परं= श्रेष्ठ विष्णु लोक याति= प्राप्त करता है सः= वह अच्युतः= नाशरहित श्रीहरि जयति= उत्कृष्ट हैं।

विशेष- मध्वाचार्य जी ने सज्जनों को प्रातः काल से रात्रिकाल तक कर्तव्य कर्मों की शिक्षा देने हेतु सदाचारस्मृति ग्रन्थ को रचा हैं। मध्वाचार्यजी ने इस ग्रन्थ में नाना पुराणों के वचनों को उदाहृत कर स्नान संध्या देवपूजा अध्ययन अध्यापन वैश्वदेव भोजन इत्यादियों की विधि का निरूपण किया है ।

आरम्भ में प्रथम श्लोक में भगवान की स्तुति की जा रही है। भगवान ने गीता में अर्जुन को उपदेश दिया है

“मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा

निरीशीर्निर्मभो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।।

उसी को यह श्लोक ध्वनित कर रहा है। कर्म करना है, परन्तु कर्म फल की आशा न ही रखना है। ममता छोडना है। इस प्रकार हम जितने भी कर्म करते हैं उन सारे कर्मों को भगवान को समर्पित करना चाहिये। जो पुरुष ऐसे जीवन जीता है वह पुरुष मुक्त हो जाता है। उस पुरुष को मोक्ष देनेवाले श्रीहरि सर्वदेवताओं से तथा सारे पदार्थों से श्रेष्ठ है।

भगवान् को कर्म समर्पण करने का अर्थ यह है कि " यह कर्म भगवान के द्वारा ही किया जा रहा हैं। न तु मेरा अंश है" इस प्रकार चिन्तन करना।

स्मृत्वा विष्णुं समुत्थाय कृतशौचो यथाविधि।

धौतदन्तः समाचम्य स्नानं कुर्याद्यथाविधि।। 2।।

समुत्थाय=शयन से उठकर विष्णुं= श्रीविष्णु को स्मृत्वा= स्मरण करने के बाद यथाविधि= शास्त्र के अनुनार कृतशौचः= मलमूत्र विसर्जन करना चाहिये। उस के बाद धौतदन्तः= दन्तकोष्ठों से दन्त मंजन करना चाहिये। उसके बाद समाचम्य= आचमन कर विधानतः= विध्युक्तरीत्या स्नानं कुर्यात्= स्नान करना चाहिये।

विशेष- सुबह अरुणोदयकाल में सूर्योदय से करीब डेढ घण्टा पूर्व ही उठकर गजेन्द्रमोक्ष स्तोत्र से हरि का स्मरण करना चाहिये। घर से नैऋत्य दिशा में मलमूत्र विसर्जन कर उस भूमि को घास से आच्छादित करना चाहिये। उसके बाद मलमूत्राङ्गों को हाथ पैरों को अच्छे से मिट्टी लगाकर पानी से शुद्ध करना चाहिये। उस के बाद निषिद्ध तिथि नक्षत्र को छोडकर अन्य दिनों में दन्तकाष्ठ से, निषिद्धतिथियों में पत्तों से अथवा घास से दन्तधावन करना चाहिये। उस के बाद केशवादि चौबीस नामों से आचमन कर विध्युक्तप्रकार से स्नान करना चाहिये। स्नानविधि को अगले श्लोकों में बताया गया है।

उद्धृतेति मृदालिप्य द्विषडष्टषडक्षरैः।

त्रिर्निमज्याप्यसूक्तेन प्रोक्षयित्वा पुनस्ततः।।3।।

मृदालिप्य निमज्य त्रिः त्रिर्जपेदघमर्षणम्।

स्रष्टारं सर्वलोकानां स्मृत्वा नारायणं परम्।।4।।

यतश्वासो निमज्याप्सु प्रणवेनोत्थितस्ततः।

सिञ्चेत्पुरुषसूक्तेन स्वदेहस्थं हरिं स्मरन्।।5।।

द्धृता इति= 'उद्धृतासि वराहेण' इस मन्त्र से मृदा आलिप्य= तुलसी जी मिट्टी से पूरे शरीर में लेपन कर द्विषट्-अष्ट-षट्-अक्षरैः= वासुदेव द्वादशाक्षर-नारायणाष्टाक्षर-कृष्णषडक्षर इन तीनों मन्त्रों को उच्चारण कर त्रिः निमज्य= तीन बार डुबकी लगाना चाहिये। उस के बाद आप्यसूक्तेन= 'आपो हि ष्ठा मयो भुवः' इस सूक्त से प्रोक्षयित्वा= पूरे शरीर को प्रोक्षण कर ततः= इसके बाद पुनः=फिर मृदा आलिप्य= मिट्टी से देह को लेपित कर पूर्ववत् त्रिः निमज्य= तीन बार अघमर्षण सूक्त को त्रिः=तीन बार जपेत्= जप करना है। सर्वलोकानां= सारे लोकों के स्रष्टारं= सृष्टिकर्ता प्रभुं= सर्वशक्त नारायणं= श्रीहरि के स्मृत्वा= स्मरण कर यतश्वासः= श्वास को धारण करते हुए अप्सु= पानीं में निमज्य= डुबकी लगाकर ततः= उस के बाद प्रणवेन= ओंकार का जप करते हुए उत्थितः= उठकर स्वदेहस्थं= अपने शरीर में रहनेवाले हरिं= हरि के स्मरन्= स्मरण करते हुए पुरुषसूक्तेन= पुरुषसूक्त से सिञ्चेत्= अपने शरीर को प्रोक्षण करना चाहिये।

विशेष- स्नानविधि इस प्रकार से है। प्रथमतः एक बार साधारण रूप से डुबकी लगाकर "उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना। मृत्तिके हन मे पापं

यन्मया दुष्कृतं कृतम्''।। इस मन्त्र से पूरे शरीर में तुलसी जी के नीचे के जगह् की मृत्तिका से लेपन करना चाहिये। पश्चात् बारह् अक्षरवाला " ओं नमो भगवते वासुदेवाय" मन्त्र, आठ अक्षरवाला "ओं नमो नारायणाय" मन्त्र, छह अक्षरवाला "क्लीं कृष्णाय नमः" इन तीनों मन्त्रों से तीन बार डुबकी लगाना चाहिये। उसके बाद "आपो हि ष्ठा मयो भुवः ता न ऊर्जे दधातन" इस मन्त्र से पूरे शरीर को प्रोक्षण करना चाहिये। फिर भी मिट्टी से लेपन कर तीन बार डुबकी लगाना है। उस के बाद "ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्" इस अघमर्षण मन्त्र को तीन बार जप करने से सारे पाप नष्ट हो जायेंगे। उस के बाद पानी में शक्त्यनुसार डूबे हुए ही विष्णु के महिमा का ध्यान करना चाहिये। प्रणव को उच्चारण करते पानी से उठकर पुरुषसूक्त से पूरे शरीर को पानी से प्रक्षालन करना चाहिये।

वसित्वा वास आचम्य प्रोक्षाचम्य च मन्त्रतः।

गायत्र्या चाञ्जलिं दत्वा ध्यात्वा सूर्यगतं हरिम्।।6।।

मन्त्रतः परिवृत्याथ समाचम्य सुरादिकान्।

तर्पयित्वा निपीड्याथ वासो विस्तृत्य चाञ्जसा।।7।।

अर्कमण्डलगं विष्णुं ध्यात्वैव त्रिपदीं जपेत्।

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्।। 8।।

वासः= दूसरा वस्त्र की वसित्वा =पहन कर आचम्य= आचमन कर मन्त्रतः = मन्त्र से प्रोक्ष्य= शिर में शङ्खमुद्रा से प्रोक्षण कर आचम्य= फिर आचमन कर गायत्र्या= गायत्री मन्त्र से अञ्जलिं= अञ्जलिपरिमित जल को सूर्य को दत्वा= देकर सूर्यगतं= सूर्य में स्थित हरिं= श्रीहरि को ध्यात्वा= ध्यान

ना चाहिये। अथ= उस के बाद मन्त्रतः= "असावादित्यो ब्रह्म" इस
त्र से परिवृत्य= परिक्रमा कर समाचम्य= आचमन कर सुरादिकान्=
ग्रह इत्यादि ग्रहों को तथा केशवादि रूपों को तर्पयित्वा= तर्पण देकर
ः=अपने गीला वस्त्र को निपीड्य= निचोड कर अञ्जसा= सम्यक्
तृत्य=सुखाने हेतु फैलाना चाहिये। उसके बाद अर्कमण्डलगं=
मिण्डल में स्थित विष्णुं= विष्णु के ध्यात्वा एव= ध्यान करते हुए
स्रपरमां= अत्यधिक एक सहस्र तक शतमध्यां= मध्यमरूप में एक सौ
दशावरां= कम से कम दस तक देवीं= अत्यन्त श्रेष्ठ त्रिपदीं= तीन
वाली गायत्री को जपेत्= जप करना चाहिये।

ोष 6-8. गीला वस्त्र को निकाल कर दूसरा सूखा वस्त्र को पहनकर
चमन कर फिर शङ्खमुद्रा से पूरे शरीर का प्रोक्षण करना चाहिये। उसके
शरीर में बारह जगहों में गोपीचन्दन धारण करना चाहिये। पश्चात् उस
ऊपर चक्र शङ्ख गदा पद्म नारायण इन पांच मुद्राओं से देह को अङ्कित
ना चाहिये। तत्पश्चात् आचमन प्राणायाम कर संवत्सर मास पक्ष तिथि
नापूर्वक कर सूर्यनारायण के अन्तर्यामी श्रीहरि के ध्यान करते हुए तीन
र्घ्य देना चाहिये। पश्चात् "असावादित्यो ब्रह्म" इस मन्त्र से स्वयं परिक्रमा
देवताओं को तर्पण देना चाहिये। शुक्लपक्ष में केशवादि बारह मन्त्रों से,
ण पक्ष में संकर्षणादि बारह नामों से विष्णु का तर्पण, तथा आदित्य
ादि नवग्रहों का भी तर्पण देना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्व में पहना हुआ
ले कपडे को निचोड कर उसे सुखाने हेतु फैलाना चाहिये। उस के बाद
त्यन्त श्रेष्ठ गायत्री जप करना चाहिये। हमारा ब्राह्मणत्व गायत्री मन्त्र से ही
ता है। अतः एक हजार से दस के बीच में अपनी शक्ति के अनुसार गायत्री

का जप करना चाहिये। गायत्री जप के बिना किसी पुरुष ब्राह्मण न ही बनेगा।

आसूर्यदर्शनात्तिष्ठेत् ततस्तूपविशेत वा।

पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रामुत्तरां सदिवाकराम्।

उत्तरामुपविश्यैव वाग्यतः सर्वदा जपेत्।। 9।।

आसूर्यदर्शनात्= सूर्य के दर्शन होने तक तिष्ठेत्= खडे होकर गायत्री जप करना चाहिये। ततः तु= सूर्यदर्शन के बाद उपविशेत वा= बैठ कर भी गायत्रीजप कर सकते है। पूर्वां सन्ध्यां= प्रातःकालीन संध्या को सनक्षत्रां= नक्षत्र रहते ही करना चाहिये। उत्तरां= सायंसन्ध्या को सदिवाकरां= सूर्य रहने पर करना चाहिये। उत्तरां= सायं सन्ध्या को उपविश्य एव= बैठ कर ही करना चाहिये। सर्वदा= तीनों कालों में वाग्यतः= वाणी का नियन्त्रण करते ही जपेत्= जप करना चाहिये।

ध्येयस्सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती

नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।

केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी

हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः।। 10।।

सवितृमण्डलमध्यवर्ती= सूर्यमण्डल के बीच में स्थित सरसिजासनसंनि-विष्टः= पद्मासन में उपविष्ट केयूरवान्= बाहुभूषणों से अलंकृत मकरकुण्डल-वान्= मगर जैसे कुण्डलों को कान में धारण किए हुए किरीटी= दिव्य किरीट से सुशोभित हारी= दिव्य हार का धारण किए हुए हिरण्मयवपुः =सोने का शरीरवाले धृतशङ्खचक्रः= शङ्ख-चक्र इन दोनों आयुधों के धारण किए हुए

ायणः= श्रीहरि नारायण जी को सदा= सर्वदा गायत्रीजप काल में
ाः= ध्यान करना चाहिये।

गायत्र्यास्त्रिगुणं विष्णुं ध्यायन्नष्टाक्षरं जपेत्।

प्रणम्य देवान् विप्रांश्च गुरूंश्च हरिपार्षदान्।। 11।।

एवं सर्वोत्तमं विष्णुं ध्यायन्नेवार्चयेद्धरिम्।

प्रकार गायत्री जप करने के बाद विष्णुं ध्यायन्= श्रीहरि के ध्यान करते गायत्र्याः= गायत्री के त्रिगुणं= तीन गुणा अधिक अष्टाक्षरं= नारायण ाक्षर मन्त्र को भी जपेत्= जप करना चाहिये। उसके बाद देवान्= सूर्य ादि अष्टदिक्पालक देवताओं को विप्रांन् च= ब्राह्मणों को भी गुरून् = जनों को हरिपार्षदान् च= विष्णु के वैयक्तिक सेवक जय विजय इत्यादि प्रणम्य= नमस्कार करने के बाद एवं= इस प्रकार सर्वोत्तमं विष्णुं= ोत्तम विष्णु को ध्यायन् एव= ध्यान करते हुए हरिं= श्रीहरि की अर्चयेत्= ना करना चाहिये।

ाष. 9-11 इन श्लोकों मे गायत्री जप का विधान निरूपित है। अरुणोदय न में उठकर स्नान कर जब तक सूर्य दिखाई न ही देता है तब तक खडे हो ही जप करना चाहिये। सूर्यदर्शन होने के बाद नीचे बैठकर भी गायत्री जप सकते हैं, उठकर भी कर सकते है। परन्तु सायंसन्ध्या बैठकर ही करना हेये। सूर्योदय के बाद नक्षत्र अदृश्य होने से पूर्व में ही प्रातस्सन्ध्या करना हेये। सूर्यास्त के पूर्व में ही सायंकालीन सन्ध्या करना चाहिये। संध्या ते समय मौनधारण करना चाहिये। गायत्रीजप करते समय भगवान् ायण के ध्यान करना चाहिये। गायत्रीमन्त्र किसी स्त्रीदेवता को अथवा को प्रतिपादित नही करता है, किन्तु साक्षात् श्रीविष्णु का ही। अतः

सूर्यमण्डल के मध्य विराजमान शङ्खचक्रधारी पद्मासन में उपविष्ट, मगर जैसे कुण्डलों से सुशोभित, केयूर (बाहुभूषण) धारी, किरीटधारी, सोने के शरीरवाले, कौस्तुभधारी श्री नारायण के ध्यान करते हुए गायत्री का जप करना चाहिये। इस प्रकार गायत्री जप के बाद सूर्य का उपस्थान करना चाहिये। तथा सारी दिशाएं, दिक्पालक, पूरे भूमण्डल में यत्र तत्र स्थित देवताएं, चतुस्सागरपर्यन्त भूमि में रहनेवाले सारे ब्राह्मण, गुरु, हरि के पार्षद जय विजय इत्यादि छप्पन लोग, सभी को प्रणाम करते हुए सभी गोब्राह्मणों को शुभाशंसन कर संध्या को श्रीकृष्ण में समर्पित कर समाप्त करना चाहिये। उस के बाद फिर आचमन कर जितनी गायत्री जप किया गया है उसकी तीन गुणा अधिक नारायणमन्त्र (अष्टाक्षर) जप करना चाहिये। नारायणाष्टाक्षर करने से ही गायत्री जप सफल होता है। तथा भगवान की पूजा भी करना चाहिये। इस को श्रौतपूजा कहा गया है। इस श्रौतपूजा में पुरुषसूक्त के सोलह ऋचाओं से सोलह उपचार संपादित कर षोडशोपचारपूजा होती है।

ध्यानप्रवचनाभ्यां च यथायोग्यमुपासनम्।। 12।।

धर्मेणेज्यासाधनानि साधयित्वा विधानतः।

स्नात्वा संपूजयेद्विष्णुं वेदतन्त्रोक्तमार्गतः।। 13।।

इस प्रकार प्रातःकालीन पूजा के बाद यथायोग्यं= यथानुकूल ध्यानप्रवचनाभ्यां= ध्यान और शास्त्राध्यायन से उपासनं= श्रीहरि की उपासना करना चाहिये। तत्पश्चात् विधानतः= विध्युक्तरीत्या धर्मेण= धर्ममार्ग से इज्यासाधनानि= पूजा के साधन तुलसी-पुष्प इत्यादि वस्तुओं को साधयित्वा= संपादन कर स्नात्वा= फिर मध्याह्नकाल में स्नान कर

वेदतन्त्रोक्तमार्गतः= वैदिक और पञ्चरात्रतन्त्रों में विहितरीत्या विष्णुं= श्रीहरि को संपूजयेत्= पूजा करना चाहिये।

वैश्वदेवं बलिं चैव कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः।

इष्टं दत्तं हुतं जप्तं पूर्तं यच्चात्मनः प्रियम्।

दारान् सुतान् प्रियान्प्राणान् परस्मै संनिवेदयेत्।।14।।

अतन्द्रितः= सतर्क होकर वैश्वदेवं= वैश्वदेव याग बलिं च एव= बलिहरण भी नित्य= प्रतिदिन कुर्यात् = करना चाहिये। इष्टं= यागों को, दत्तं= दान, हुतं= होम, जप्तं=जाप, पूर्तं= जो भी जनोपयोगी कार्य किया हुआ है, तथा आत्मनः =अपने प्रियं= प्रिय वस्तु यत् च= जो कुछ भी है उस को, दारान्= पत्नी को, सुतान्= बच्चों को, प्रियान् प्राणान्= सब से प्रिय अपने प्राणों को भी परस्मै= श्रीहरि को संनिवेदयेत्= समर्पित करना चाहिये।

भुक्तशेषं भगवतो भृत्यातिथिपुरस्सरः।

भुञ्जीत हृद्गतं विष्णुं स्मरंस्तद्गतमानसः।

आचम्य मूलमन्त्रेण कोष्ठं स्वमभिमन्त्रयेत्।। 15।।

तद्गतमानसः=श्रीहरि के चिन्तन करते करते भृत्यातिथिपुरस्सरः=अपने दास तथा अभ्यागत अतिथियों के साथ भागवतः भुक्तशेषं= भगवान को समर्पित अन्नशेष को भुञ्जीत = भोजन करना चाहिये। भोजने के बाद आचभ्य= आचमन कर मूलमन्त्रेण=नारायण अष्टाक्षर मन्त्र से स्वं= अपने कोष्ठं= पेट को अभिमन्त्रयेत्= अभिमन्त्रण करना चाहिये।

विशेष 13-15. दिन को आठ भागों में विभक्त कर प्रथम भाग में प्रातःस्नान संध्या, द्वितीयभाग में स्वयं वेदाध्ययन दूसरों के अध्यापन करना चाहिये।

उस के वाद तीसरे भाग में भगवत्पूजा होम इत्यादियों का साधन धन धान्य इत्यादि का संग्रह करना चाहिये। इस प्रकार साधनों को संचित कर पुनः दिन के मध्यभाग (चौथवा अंश) में पुनः स्नानकर पञ्चरात्र वेदोक्त विधि से भगवत्पूजा करना चाहिये। अर्घ्य पाद्य इत्यादि सोलह उपचार समर्पित कर शालिग्रामशिला अथवा अन्य प्रतिमाओं संनिहित भगवान को शुद्धरूप से तैयार किया गया अन्न को भोग लगाकर भगवान को आरती कर फिर छत्र चामर इत्यादि उपचार दिखाकर पूजा समाप्त करना चाहिये। उस के बाद लक्ष्मीदेवी चतुर्मुखब्रह्मा हनुमानजी गरुडजी शेषजी इत्यादि देवताएं तथा सनक सनन्दन शुक इत्यादि ऋषि लोगों को भी भगवन्निवेदित भोग का कुछ अंश समर्पित करना चाहिये।

उसके बाद प्रतिदिन वैश्वदेव होम करना चाहिये। हम लोग हर दिन धान्यों को पकाने हेतु उसके साथ रहनेवाले अत्यन्त सूक्ष्म क्रिमि कीट इत्यादि को भी छेदन भेदन पकाना शोषण और मार्जन इस प्रकार पांच प्रकार हिंसा करते हैं। इस से उत्पन्न होनेवाले पाप का परिहारार्थ प्रतिदिन देवताओं को अन्न की आहुति देकर वैश्वदेव करना चाहिये। उस के बाद सारे भूतों की तृप्ति हेतु अन्न से चक्राकार में भूतबलि भी देना चाहिये। इस प्रकार देवताओं के संतोष हेतु देवयज्ञ, पितृदेवताओं के संतोषहेतु पितृतर्पण, पापपरिहारार्थ वैश्वदेव, भूततृप्तिहेतु भूतबलि, ऋषितृप्ति हेतु स्वाध्याय तथा अध्यापन इन सारी क्रियाओं से समस्तलोक ही संतुष्ट हो जाता है। उस से मनुष्य उन लोगों के ऋण से मुक्त हो जाता है।

इन सारी क्रियाओं को और अपने सारे प्रियवस्तुओं को बाल-बच्चे पत्नी प्राण इत्यादि सब कुछ भी भगवान को फिर समर्पित करना चाहिये।

ास के बाद ब्रह्मचारी और यति इन दोनों को प्रथमतः भिक्षा प्रदान करना ाहिये। उसके बाद अपने दास दासियाँ अतिथि अभ्यागत परिवार इन सब 5 साथ भगवान को लगाया गया भोग को ग्रहण करना चाहिये। भोजन के ामय में भी बिल्कुल मौन से भगवान के स्मरण करते हुए 'गोविन्द' गोविन्द' इस प्रकार नामोच्चारण करना चाहिये। भोजन के बाद नारायण ाष्टाक्षरमन्त्र से भुक्तान्न के सम्यक् पचन हेतु अपने पेट को अभिमन्त्रित ारना चाहिये तथा 'अगस्त्य और वडवानल! मेरे द्वारा खाया गया अन्न को ाचन करें' इस प्रकार प्रार्थना करना चाहिये।

वेदशास्त्रविनोदेन प्रीणयन् पुरुषोत्तमम्।

अहश्शेषं नयेत्सन्ध्यामुपासीताथ पूर्ववत्।।16।।

दशास्त्रविनोदेन= वेद और शास्त्रों के अभ्यास और विचारों से पुरुषोत्तमं= ीहरि को प्रीणयन्= संतुष्ट कराते हुए अहश्शेषं= दिन के अवशिष्ट भाग को ायेत्= बीताना चाहिये। अथ= सायंकाल में पूर्ववत्= प्रातःवत् संध्याम् ापासीत= संध्यावन्दन करना चाहिये।

यामात्परत एवाथ स्वपेत् ध्यात्वा जनार्दनम्।

अन्तराले ततो बुद्धा स्मरेत बहुशो हरिम्।। 17।।

ाथ= सायंकालीन भोजन इत्यादि कर यामात् परत एव= रात्रि के प्रथम ाग के बाद ही जनार्दनं= असुरसंहारि श्रीकृष्ण के ध्यात्वा= ध्यान कर वपेत्= शयन करना चाहिये। ततः= उस के बाद अन्तराले= बीच में द्ध्वा= नीन्द से उठकर हरिं= श्रीहरि को बहुशः= अनेक बार स्मरेत= मरण करना चाहिये।

विशेष- 16-17. मध्याह्न भोज करने के बाद फिर वेदों के प्रवचन शास्त्रों के अध्ययन से श्रीहरि को प्रसन्न करना चाहिये। तथा अपने गृहस्थीय कर्तव्यों को निभाना चाहिये। इस प्रकार सायंकाल प्राप्त होने पर पूर्ववत् हजार से दस के बीच में गायत्री जप के साथ सायंकालीन सन्ध्योपासना करना चाहिये। तब तक रात्र काल प्राप्त होता है। रात्रि के तीन भाग होते हैं। हर एक भाग करीब तीन घण्टे का होता है। उस प्रकार रात्रि के प्रथम याम (भाग) में भोजन इत्यादि समाप्त कर द्वितीय याम में ही पूर्व में या दक्षिण में सिर रखकर शयन करना चाहिये। रात्रि के प्रथम भाग में सोना सर्वथा निषिद्ध है। बीच में कभी उठने पर हरि के स्मरण करते हुए फिर सोना चाहिये। फिर ब्राह्मी मुहूर्त में उठना चाहिये। इस प्रकार आदर्श दिनचर्या को अपनाना चाहिये।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतः स्वभावम्।

करोमि यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयामि।। 18।।

कायेन= शरीर से, वाचा= वाणी से, मनसा= मन से, इन्द्रियैः वा= अथ वा इन्द्रियों से, बुद्ध्या= निश्चयरूप बुद्धि से, आत्मना वा= अथ वा आत्मस्वरूप से स्वभावम् अनुसृतः= अपने स्वभाव के अनुसार यत् यत्= जो कुछ भी करोति= करता है तत् सकलं= उन सारे कर्मों को परस्मै नारायणाय= सर्वोत्तम नारायण को समर्पयेत्= अर्पित करना चाहिये।

विशेष 18. मन पांच प्रकार का होता है- मन बुद्धि अहंकार चित्त और चेतना। अतः मनो-वाक्-कार्यों से, इन्द्रियों से, बुद्धि से, अथ वा आत्मा से जो कुछ भी करता है उन सारे कर्मों को नारायण को समर्पण करना चाहिये। श्रीहरि के इच्छा के बिना एक घास भी हिल नही सकता है। अतः "हमारे

कर्म नारायण भगवान् के द्वारा ही किये गये जाते हैं" इस चिन्तन से
: सारे कार्यो को भगवान् को समर्पित करना चाहिये।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।

क्षरस्सर्वाणि भूतानि कूटस्थोक्षर उच्यते।।19।।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।

यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।20।।

यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः।

अतोस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।21।।

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।

स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत।।22।।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।

एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत।।23।।

= इस जगत में क्षरः= क्षर अक्षर एव च= और अक्षर इस प्रकार इमौ=
ो पुरुषौ= दो पुरुष हैं। सर्वाणि भूतानि= साधारण जीवों से चतुर्मुख
जी तक सभी जीव क्षरः= क्षरपदार्थ हैं। कूटस्थः= आकाश जैसे
कार रहनेवाली प्रकृति (लक्ष्मीजी) अक्षरः उच्यते= अक्षर कही जाती
अन्यः= इन दोनों से भिन्न उत्तमः पुरुषः तु= उत्तम पुरुष यः ईश्वरः=
ईश्वर अव्ययः= नाशरहित होकर लोकत्रयं=तीनों लोकों मे आविश्य=
ट होकर बिभर्ति= जगत का रक्षण करता हैं वह परमात्मा इति=
ात्म शब्द से उदाहृतः= कहा जाता हैं।

यतः= जिस कारण से अहं= मैं (ईश्वर) क्षरम् अतीतः = क्षर पदार्थ से उत्तम हूँ, अक्षरात् अपि च=अक्षर पदार्थ से भी उत्तमः =उत्तम हूँ, अतः= उस कारण से लोके= लोक में वेदे च =वेदों में भी पुरुषोत्तमः= पुरुषोत्तम शब्द से प्रथितः= प्रसिद्ध अस्मि= हूँ।

भारत= हे अर्जुन ! यः= जो पुरुष असंमूढः= जागृत होकर एवं= पूर्वोक्त प्रकार मां= मुझे पुरुषोत्तमं= ईश्वर पुरुषों से उत्तम है इस प्रकार से जानाति= समझता है सः= वह पुरुष सर्ववित्= सर्ववस्तुओं के ज्ञानी बनकर सर्वभावेन= सर्वथा मां=मुझे भजति= प्राप्त करता है।

अनघ= पापरहित अर्जुन ! इति= इस प्रकार इदं= यह गुह्यतमं= अत्यन्त गोपनीय शास्त्रं= शास्त्र मया= मेरे द्वारा उक्तम्=कहा गया है। भारत=हे भरतवंशी अर्जुन ! एतत्= इस शास्त्र को बुद्ध्वा= समझकर बुद्धिमान् = बुद्धिमान् कृतकृत्यश्च= कृतकृत्य भी स्यात्= बनेगा।

विशेष- 19-23. अब भगवद्गीता के वचनों के द्वारा भगवान् श्रीहरि ही सर्वोत्तम है इस विषय का प्रतिपादन कर रहे हैं। इस ब्रह्माण्ड में दो प्रकार के पुरुष हैं। क्षर और अक्षर। पुरुष शब्द का अर्थ है जीव। जीव तो नित्य ही है। परन्तु हम लोगों से प्रारम्भ कर चतुर्मुख ब्रह्मा जी तक जीवों के शरीर नष्ट होता है। अतः ये जीव क्षरशब्दवाच्य हैं। लक्ष्मी जी जो नारायण भगवान की पत्नी है, उन के देह कभी नष्ट नही होता है। अतः लक्ष्मी जी अक्षरशब्दवाच्य हैं। भगवान् नारायण के भी शरीर कभी नष्ट नही होता है। परन्तु ईश्वर क्षर और अक्षर दोनों से भी अत्यन्त अलग प्रकार के होने के कारण पुरुषोत्तम कहा गया है। पुरुषोत्तम का अर्थ यह नही है कि बहुत सारे पुरुषों मे यह भी एक है, परन्तु विद्यमान सारे पुरुषों में यही उत्तम है। जैसे बहुत सारे मूर्खों में से जो पुरुष कुछ दो अक्षर जानता है वह पण्डित है। किन्तु इन पुरुषों से

अलग होकर जो उत्तम है वही पुरुषोत्तम है। इस का अर्थ यह निकलता है कि पुरुषोत्तम ईश्वर इस जगत के अन्तर्गत नहीं हैं किन्तु जगत् से अलग हैं। यह पुरुषोत्तम इल लोक में प्रविष्ट होकर इस का रक्षण करते हैं। उन्ही को परमात्मा कहा गया है। इसी प्रकार पुरुषोत्तम को सम्यक् समझकर जो पुरुष ईश्वर की उपासना करता है वह ज्ञानी है, बुद्धिमान् है। वही पुरुष भगवान् को प्राप्त करता है। यह विषय भगवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय में प्रतिपादित है।

रुद्रं समाश्रिता देवा रुद्रो ब्रह्माणमाश्रितः।

ब्रह्मा मामाश्रितो नित्यं नाहं कंचिदुपाश्रितः।।24।।

देवाः= इन्द्र इत्यादि देवताएं रुद्रं= शंकरजी के आश्रिताः= आश्रय में है। रुद्रः= शंकरजी ब्रह्माणं= ब्रह्माजी के आश्रितः=आश्रय में है। ब्रह्मा= ब्रह्माजी नित्यं= प्रतिदिन मां= मेरे (श्रीहरि का) आश्रितः= आश्रय में हैं। अहं= मैं कंचित्= किसी का भी उपाश्रितः न= आश्रय में न ही हूं।

विशेष 24. इन्द्र इत्यादि सारी देवताएं शंकरजी के आश्रय में रहते हैं। शंकर जी चतुर्मुख ब्रह्माजी के आश्रय में रहते हैं। चतुर्मुख ब्रह्माजी मेरे आश्रय में रहते हैं। मैं तो बिलकुल स्वतन्त्र हूं। किसी का आश्रम मैं न ही हूं। अतः मैं ही सर्वोत्तम पुरुष हूं। यह वचन श्रीहरि का है।

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।

श्रद्धावन्तोनुसूयन्तो मुच्यन्ते तेपि किल्बिषैः।।25।।

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।

सर्वज्ञानविमूढांस्तान् विद्धि नष्टानचेतसः।। 26।।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेस्मिन् दैव आसुर एव च।

विष्णुभक्तिपरो दैवो विपरीतस्तथासुरः।।27।।

ये मानवाः= जो मनुष्य मे= मेरे इदं मतं= इस मत को श्रद्धावन्तः= श्रद्धायुक्त होकर अनसूयन्तः=असूया रहित होकर अनुतिष्ठन्ति= अनुष्ठान करते हैं ते अपि= वे मनुष्य भी कर्मभिः= कर्मपाश से मुच्यन्ते= मुक्त होंगे।

ये तु= जो मनुष्य अभ्यसूयन्तः= असूया से मे मतं= मेरे मत को न अनुतिष्ठन्ति=अनुष्ठान नही करते हैं तान् = उन मनुष्यों को अचेतसः= बुद्धिरहित सर्वज्ञानविमूढान्= ज्ञातव्य विषय में विमूढ और नष्टान्= नष्ट इस प्रकार से विद्धि= समझो।

अस्मिन्= यह लोके= जगत मे दैवः=दैवी लोग आसुरः एव च= आसुरी लोग इस प्रकार से द्वौ= दो प्रकार के भूतसर्गौ= मनुष्यों की सृष्टि है। उन में विष्णुभक्तिपरः= विष्णुभक्ति संपन्न जीवों को दैवः= दैवी लोग समझना चाहिये तथा=और विपरीतः= विष्णुभक्तिरहित जीवों को आसुरः= आसुरी लोग समझना चाहिये।

विशेष 25-27. इस जगत में दो प्रकार के मनुष्यों की सृष्टि होती है। जो विष्णु भक्त मनुष्य हैं उनकी दैव सृष्टि है। जो विष्णु के द्वेष करते हैं उन की सृष्टि आसुरी सृष्टि है। इन में जो दैवी स्वभाव के मनुष्य हैं वे मेरे मत के अनुसार जीवन यापित कर मुक्त हो जाते हैं। ये मेरे द्वेषी हैं और असूया से मेरे शास्त्र की अवमानना करते हैं वे लोग कभी भी मुक्त नही होंगे।

स्मर्तव्यः सततं विष्णुः विस्मर्तव्यो न जातुचित्।

सर्वे विधिनिषेधास्स्युः एतयोरेव किंकराः।। 28।।

धर्मो भवत्यधर्मोपि कृतो भक्तैस्तवाच्युत।

पापं भवति धर्मोपि यो न भक्तैः कृतो हरेः।। 29।।

विष्णुः=श्रीहरि को सततं= सर्वदा स्मर्तव्यः= स्मरण करना चाहिये। जातुचित्= कभी भी न विस्मर्तव्यः= विष्णु को भूलना नही चाहिये। सर्वे= सभी विधिनिषेधाः= विधि और निषेध एतयोः एव= स्मरणविधि और विस्मरण निषेध इन दोनों के किंकराः= निकृष्ट हैं।

अच्युत= हे नारायण ! तव भक्तैः= तुमारें भक्तों के द्वारा कृतः= किया गया अधर्मः= अधर्म कार्य भी धर्मः भवति=धर्मकार्य बन जाता है। हरेः न भक्तैः= हरि में भक्तिरहित लोगों के द्वारा कृतः= किया गया धर्मः अपि= धर्मकार्य भी पापं भवति= पापकार्य हो जाता है।

विशेष 28-29. हम जो भी धर्म कार्य करते हैं वे सारे कार्य श्रीहरिस्मरण से ही सफल होते हैं । हरिस्मरण के बिना ये सारे कर्म व्यर्थ ही होते हैं। अतः सारे शास्त्रों का मुख्य विधि एक ही है "सर्वदा हरि स्मरण करना चाहिये"। 'संध्यावन्दन करना चाहिये' 'सत्य बोलना चाहिये' 'अग्निहोत्र करना चाहिये' 'दान देना चाहिये' इन सारी विधियों से हरिस्मरण का विधि सर्वोत्कृष्ट है, मुख्य है। जैसे मानवता का मुख्यविधि है "मनुष्य दूरसे लोगों के प्रति दयावान् होना चाहिये"। इस मुख्य विधि के अधीन ही "पढना चाहिये" "लिखना चाहिये" इत्यादिविधि प्रवृत्त होतीं हैं और मुख्य विधि के विरोध में ये सारी विधियां कार्य नही करती हैं। उसी प्रकार हरिस्मरण विधि के अधीन ही अन्य धार्मिक विधियां प्रवृत्त होती हैं। हरिस्मरण विधि के विरोध में कार्य कार्य नही करती हैं। उसी प्रकार "हरिस्मरण को कभी छोडना नही चाहिये" इस निषेध के अधीन ही अन्य निषेध जैसे "असत्य नही

बोलना चाहिये" "मांस नही खाना चाहिये" "प्राणिहिंसा नही करना चाहिये" इत्यादिनिषेध प्रवृत्त होंगे।

इसी कारण से मुख्य "हरिस्मरण" नियम के पालन करनेवाले लोगों के द्वारा किया गया अधर्म कार्य भी धर्मकार्य बन जाता है, क्यूं कि वह अधर्मकार्य भी मुख्यविधि के अनुसार ही किया गया है। तथा हरि में भक्ति रहित लोगों के द्वारा किया धर्म कार्य भी पाप कार्य बन जाते हैं, क्यूं कि वे धर्मकार्य मुख्य नियम के अनुसार नही किये गये हैं।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

नित्यं भवेच्च मन्निष्ठो बुभूषुः पुरुषस्तथा।। 30।।

मन्मनाः भव= मन मुझ में लगावो, मद्भक्तो भव= मेरे भक्त बनो, मद्याजी भव= मुझे उद्देश्य कर याग करो, मां नमस्कुरु= मुझे नमस्कार करो, नित्यं= प्रतिदिन मन्निष्ठ= मुझ में श्रद्धावान् भव= श्रद्धावान् रहो, बुभूषुः= मोक्ष की इच्छा करनेवाले पुरुषः=मनुष्य तथा= पूर्वोक्तप्रकार से रहना चाहिये।

विशेष- गीता के वचनों को उदाहृत कर प्रतिदिन हरिस्मरण की अत्यन्त आवश्यकता का प्रतिपादन कर रहे हैं। जो पुरुष संसार को छोडकर मुक्ति को प्राप्त करना चाहता है उस को भगवान श्रीकृष्ण जी कह रहे हैं कि "तुम मुझ में मन लगावो, मेरे भक्त बनो, मुझे उद्देश्य कर याग करो, मुझे नमस्कार करो, प्रतिदिन मेरे विषय में श्रद्धा रखो, किसी अन्यदेवताओं को उद्देश्य कर याग मत करो, मुझे उद्देश्य कर याग करो इस प्रकार रहने से ही मोक्ष प्राप्त होगा"।

एष नित्यस्सदाचारो गृहिणो वनिनस्तथा।

वैश्वदेवं बलिं दन्तधावनं चाप्यृते वटोः।। 31।।

एषः= पूर्वश्लोकों में कह गया जो धर्म है वह धर्म गृहिणः= गृहस्थों को तथा वनिनः= वानप्रस्थों को भी नित्यः सदाचारः= प्रतिदिन का आचार है। वैश्वदेवं= वैश्वदेव बलिं= बलिहरण दन्तधावनं च अपि= काष्ठों से दान्तों को मांजना भी ऋते= इन तीनों को छोडकर वटोः=ब्रह्मचारियों का भी यही सदाचार है।

विशेष- गृहस्थ तथा वा[illegible]स्थ इन दोनों आश्रमों को पूर्वोक्त आचार प्रतिदिन विहित है। ब्रह्मचारी का भी धर्म भी यही है। परन्तु वैश्वदेव और बलिहरण नही हैं। दन्तकाष्ठों से दन्तधावन भी निषिद्ध है।

एवमेव यतेः स्वीयवित्तेन तु विना सदा।

मूलमन्त्रैः सदा स्नानं विष्णोरेव च तर्पणम्।। 32।।

विशेषो निष्क्रिययतेरजलाञ्जलिता तथा।

तर्पणं तु हरेरेव यतेरन्यस्य चोदितम्।

समिद्धोमो वटोश्चैव स्मृत्वा विष्णुं हुताशने।।33।।

यतेः= संन्यासियों को स्वीयवित्तेन विना= अपने पैसे के बिना सदा= सर्वदा एवमेव= बाकी आचार समान हैं। सदा= सर्वदा मूलमन्त्रैः =नारायणाष्टाक्षर मन्त्र से तीनों कालों मे स्नान तथा विष्णोः एव=केवल विष्णु को तर्पणं= तर्पण ये दोनों कार्य विशेषः= विशेषरूप से विहित है।

निष्क्रिययतेः= परमहंस संन्यासि को अजलाञलिता=जलाञलि के बिना हरेः एव= श्रीहरि को ही तर्पणं तु= तर्पण देना विशेष रूप से विहित है। अन्यस्य= परमहंस यति को छोडकर बाकी हंस-कुटीचक-बहूदक संन्यासियों को हरेः एव तर्पणं= हरि को तर्पण देना चोदितं= विहित है। तथा समिद्धोमः= कुटीचक-बहूदकों को समिद्धोम भी विहित है। वटोः च एव=

ब्रह्मचारी को भी विष्णुं= विष्णु के स्मृत्वा= स्मरण कर हुताशने= अग्नि में समिद्धोमः= समिधाओं का होम विहित है।

सर्ववर्णाश्रमैर्विष्णुरेक एवेज्यते सदा।

रमाब्रह्मादयस्तस्य परिवारतयैव तु।। 34।।

सर्ववर्णाश्रमैः= सभी वर्ण और आश्रमों के लोगों के द्वारा सदा= सर्वदा विष्णुः एक एव= केवल विष्णु को उद्देश्य कर इज्यते= याग किया जाता है। तस्य= उस श्रीहरि के परिवारतया एव= परिवारस्वरूप में ही रमाब्रह्मादयः= लक्ष्मीदेवी- ब्रह्माजी-शंकर जी इत्यादि देवताओं को याग किया जाता है।

विशेष 32-34. चार प्रकार के संन्यासी होते हैं। कुटीचक बहूदक हंस और परमहंस। इन में परमहंस यति सर्वथा क्रियारहित होते हैं। अतः उन को स्नान सन्ध्या प्रणवजप ही कर्तव्य हैं। शिखा यज्ञोपवीत इत्यादि कुछ भी न हैं । वह परमहंस संन्यासी सर्वदा हरि को ही तर्पण करते हैं। ब्रह्मयज्ञ इत्यादि पञ्चमहायज्ञ उन के लिये विहित नही हैं। देवतर्पण-ऋषितर्पण-पितृतर्पण ये तीनों तर्पण नही हैं। सभी प्रकार के यति केवल हरि को ही तर्पण देते हैं। कुटीचक बहूदक संन्यासि लोग हरि को उद्देश्य कर अग्नि में आहुति भी देना चाहिये।

संन्यासियों को अपने धन नही होता है। अतः वित्त की चिन्ता के बिना केवल हरि का निरन्तर स्मरण करना चाहिये। संन्यासियों को त्रिकालस्नान विहित है। और केवल विष्णु को ही तर्पण देना चाहिये।

न केवल संन्यासियों के लिये ये नियम हैं, अपि तु सभी वर्णों के तथा आश्रमों के लोगों के लिये भी यही नियम लागू होते हैं। केवल विष्णु का ही भजन पूजन तर्पण इत्यादि करना चाहिये। विष्णुपरिवार के अङ्गतया लक्ष्मी ब्रह्माजी

हनूमान जी इत्यादियों के भी पूजन करना चाहिये। ध्यान रखना है कि ये देवताएं सर्वोत्तम नहीं हैं किन्तु विष्णु ही सर्वोत्तम हैं।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।

सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।। 35।।

कविं= सर्वज्ञानी पुराणं= सबसे पुराने अनुशासितारं= उपदेशक अणोः अणोयांसं= सूक्ष्म से सूक्ष्म सर्वस्य धातारं= सब के रक्षक अचिन्त्यरूपं= अत्यन्त सूक्ष्म होने से हमारे चिन्तन के परे आदित्यवर्णं= उदीयमान सूर्य जैसे स्वर्णवर्ण तमसः परस्तात्= प्रकृति से भी उत्कृष्ट जो भगवान हैं उन को जानने से मुक्त होगा।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसस्तु पारे।

सर्वाणि रूपाणि विचिन्त्य धीरो नामानि

कृत्वाभिवदन्यदास्ते।।36।।

धीरः= जो भगवान जिस कारण से सर्वाणि रूपाणि= ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत सभी वस्तुओं के रूप को विचिन्त्य= सृजित कर नामानि कृत्वा= उनके नाम भी सृजितकर अभिवदन् आस्ते= नाम बोलते रहते हैं एतं= इन तमसः तु पारे= प्रकृति से भी उत्कृष्ट आदित्यवर्णं= सूर्य जैसे स्वर्णिम आभावाले महान्तं पुरुषं= महापुरुष को अहं= मैं वेद= जानता हूं।

धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार शक्रः प्रविद्वान् प्रदिशश्चतस्रः।

तमेवं विद्वानमृत इह भवति नान्यः पन्था अयनाय विद्यते।। 37।।

यं= जिस भगवान को पुरस्तात्= पूर्व में धाता = ब्रह्माजी नें उदाजहार= उत्कृष्टत्वेन प्रतिपादन किया है, चतस्रः प्रदिशः= चारो दिशांओ में रहनेवाले

पदार्थों को प्रविद्वान्= जाननेवाले शक्रः= इन्द्र ने भी जिन को उदाजहार= उत्कृष्टत्वेन प्रतिपादन किया है, तं= उस भगवान् को एवं= उत्कृष्टत्वेन विद्वान्= जाननेवाला पुरुष इह= इस संसार में अमृतः भवति= मुक्त हो जाता है। अयनाय= मोक्ष के लिये अन्यः पन्थाः= भगवान के ज्ञान के बिना दूसरा कोई उपाय न विद्यते= नही हैं।

विशेष 35-36. भगवान् के ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस विषय में श्रुतिस्मृतिवाक्य प्रमाण दे रहे हैं। 35 श्लोक गीता वाक्य है। भगवान् सर्वज्ञानी हैं, पुरातन पुरुष हैं, सब को ज्ञानोपदेश करनेवाले वही हैं। अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थों से भी सूक्ष्म हैं। इसी कारण से भगवान के रूप अचिन्त्य है। सब का रक्षक वही हैं। प्रकृति से परे हैं। उदीयमान सूर्य जैसा सोने के रंग के हैं। उस भगवान की चिन्तना से मुक्त होजाते हैं।

36-37 श्लोक यजुर्वेद के हैं। वेद्पुरुष बोल रहे हैं कि जो भगवान् ने सब वस्तुओं के रूप और नाम की सृष्टि कर लिया है उस भगवान को मैं जानता हूं। न केवल मैं अपि तु अन्य लोग भी उसे जानते हैं। ब्रह्माजी भी इसी भगवान् को उत्कृष्ट मान कर भगवान के गुणगान कर रहे हैं, जो इन्द्र चारों दिशांओ मे रहनेवाले पदार्थों को जानते हैं वे भी उसी भगवान् के गुणगान करते हैं। इस भगवान् के ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त होती है। मोक्ष के लिये दूसरा कोई मार्ग नही है। इस प्रकार वेद स्मृति इत्यादि में भगवान के गुणगान किया गया है । अतः उसी भगवान् के ज्ञान प्राप्त करना उत्यन्त आवश्यक है।

आनन्दतीर्थमुनिना व्यासवाक्यसमुद्धृतिः।

सदाचारस्य विषये कृता संक्षेपतः शुभा।। 38।।

सदाचारस्य विषये= सदाचार के विषय में शुभा= अत्यन्त श्रेष्ठ व्यासवाक्य समुद्धृतिः=भगवान वेदव्यासजी के वचनों के उद्धरण संक्षेपतः= संक्षिप्तरूप से आनन्दतीर्थमुनिना= आनन्दतीर्थ (मध्वाचार्य) नामक मुनि के द्वारा कृता= किया गया है।

अशेषकल्याणगुणनित्यानुभवसत्तनुः
अशेषदोषरहितः प्रीयतां पुरुषोत्तमः।। 39।।

अशेषकल्याणगुणनित्यानुभवसत्तनुः = सारे मङ्गलकरगुण तथा सर्वविषयों के ज्ञान यह दोनों जिस का मङ्गल शरीर है वे अशेषदोषरहितः= सारें दोषों से दूर रहनेवाले पुरुषोत्तमः= पुरुषोत्तम श्रीहरि प्रीयतां= इस ग्रन्थ की रचना से संतुष्ट होजाए।

विशेष 37-38. इस प्रकार सदाचार के बारें निरूपण कर मध्वाचार्य जी इस ग्रन्थ को समाप्त कर रहे हैं। वेदव्यास जी के अनेक ग्रन्थों से चुने गये वचनों के द्वारा ही इस ग्रन्थ में सदाचार का वर्णन किया गया है। इस की रचना से भगवान संतुष्ट होजाए। भगवान के शरीर प्रकृति से निर्मित नही है, किन्तु पूर्णतया सारे कल्याण गुण और नित्यज्ञान इन दोनों ही भगवान् के शरीर है। और भगवान् में दोष अणुमात्र भी नहीं है। वे पुरुषोत्तम भगवान् इस कार्य से संतुष्ट होकर अनुग्रह करें।

सदाचारस्मृतिग्रन्थ संपूर्ण होता है।।

BRIEF LIFE HISTORY OF SHRI SWAMIJI

Sri Vishvesha Tirtha was born in the year 1931 at Ramakunja to a Shivalli Tulu Brahmin family and his pre-Sanyasa name was Venkataramana Bhat. He was ordained into Sanyasa at the young age of 8 years in 1938. His vidya guru is Vidyamanya Teertha of Sri Bhandarkeri Math.

The Swamiji assumed first paryaya, turn to worship Lord Krishna at Udupi, at a young age. During his first Paryaya in the year 1953, he organized the All India Madhva Conference in Udupi. During his second Paryaya in 1969, he got the Badagumalige in Udupi repaired. During his third tenure as Paryaya Swamiji in 1985, he has got a new hall built at Udupi called Krishna Dhama.

The swamiji is involved in various social service organisations, and is said to have started many educational and social service organisations.

The Akhila Bharat Madhwa Maha Mandal [ABMM] center started by the Swami is said to have helped many of poor students. He has established math centres at various holy places in India. These centres are of great help to many pilgrims.

He is one of advisers to VHP. He was in the forefront in the Ram Janmabhoomi movement. He has also led the Go Raksha (Cow Protection) movement.

Sri Vishvesha Tirtha has ordained Sri Vishvaprasanna Tirtha as his successor to the Pejavara matha in 1988.

ग्रन्थकर्ता- श्री वीरनारायणाचार्य पाण्डुरंगी
न्यायवेदान्त विद्वान्, न्यायवेदान्त विद्यावारिधि,
विभागाध्यक्ष तथा संकायाध्यक्ष, दर्शन विभाग
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रमुख प्रकाशन
तात्पर्यचन्द्रिका, समवायविमर्शः, शक्तिवादः,
न्यायसुधा कन्नड़ अनुवाद, मुक्तितत्त्व